योग सर्वत्र

डॉ. श्वेता त्रिपाठी

BlueRose ONE.com
Stories Matter
NewDelhi • London

BLUEROSE PUBLISHERS
India | U.K.

Copyright © Dr. Shweta Tripathi 2025

All rights reserved by author. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the author. Although every precaution has been taken to verify the accuracy of the information contained herein, the publisher assumes no responsibility for any errors or omissions. No liability is assumed for damages that may result from the use of information contained within.

BlueRose Publishers takes no responsibility for any damages, losses, or liabilities that may arise from the use or misuse of the information, products, or services provided in this publication.

BlueRoseONE.com
Stories Matter
NewDelhi • London

For permissions requests or inquiries regarding this publication, please contact:

BLUEROSE PUBLISHERS
www.BlueRoseONE.com
info@bluerosepublishers.com
+91 8882 898 898
+4407342408967

ISBN: 978-93-7310-449-2

Cover design: Yash Singhal
Typesetting: Namrata Saini

First Edition: October 2025

भूमिका

"योग सर्वत्र" अर्थात् योग हर जगह विद्यमान है। यह सत्य है और इसे मात्र समझने और जानने की आवश्यकता है। योग सर्वत्र को जानकर जीवन में उतारने की आवश्यकता हेतु ही इस पुस्तक का प्रकाशन किया जा रहा है। सभी पाठकों के समक्ष इस पुस्तक को लाने का उद्धेश्य यही है कि ऋषियों द्वारा दिया गया योग का ज्ञान सभी साधकों तक पहुंच सके और सभी को यह बात समझ आ सके कि योग कण–कण में विद्यमान है। इस पुस्तक में योग के आधारभूत तत्वों को एक स्थान पर एकत्रित किया गया है जो विद्यार्थी योग के क्षेत्र से जुड़े है उन्हें एक ही पुस्तक में मुख्य विषयों का ज्ञान सरलता के साथ हो सके ऐसा प्रयास किया गया है। इस पुस्तक में आत्म कल्याण हेतु बहुत ही उपयोगी और प्रत्यक्ष उपाय बताये गये हैं। प्रत्येक साधक को इस पुस्तक में बताये गये साधनों का पालन करते हुए शारीरिक और मानसिक रूप से सुदृढ होना चाहिए। महर्षि पतंजलि का योग दर्शन, घेरण्ड संहिता, हठ प्रदीपिका, सांख्य दर्शन, वेद, उपनिषद्, बौद्ध और जैन दर्शन जैसे कई ग्रंथों में योग को प्रतिपादित किया गया है और उनसे जुड़े योग के महत्व को इस पुस्तक में समेटने का प्रयास किया गया है आसान भाषा में कहें तो योग को समझकर जीवन में कैसे उतारा जाए इसे बताने की चेष्टा मेरे जैसे अल्पज्ञ द्वारा की गई है। योग साधक ही नहीं हर मनुष्य को इस पुस्तक का लाभ मिल सके इसी उद्धेश्य के साथ यह सभी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत की जा रही है।"

आभार

''योग सर्वत्र'' के सफल लेखन कार्य हेतु मै सर्वप्रथम अपने आराध्य गणपति और श्रीनाथ जी को प्रणाम करती हूँ। मेरे नाना–नानी और दादा–दादी का आर्शीवाद इस सफलता का मुख्य स्त्रोत रहा है, उन्हें भी मैं प्रणाम करती हूँ। मेरे जीवन के प्रथम गुरू मेरी माता (मधु त्रिपाठी) और पिता (उमा शंकर त्रिपाठी) को मैं कोटि–कोटि प्रणाम करती हूँ जिन्होंने मुझे हर कदम पर आगे बढ़ने की प्रेरणा दी। अपने श्वसुर (अशोक मिश्रा) और सासू माँ (उषा मिश्रा) को भी मैं नमन करती हूँ उन्होंने हमेशा बिना रोक–टोक के मेरे साथ चलते हुए मेरी मदद के लिए हर संभव प्रयास किया। जीवन के महत्वपूर्ण अंश मेरे पति (अरविन्द मिश्रा) जिन्होंने मुझे पुस्तक लेखन के लिए प्रोत्साहित कर हर कदम पर मेरी मदद की उनका सःस्नेह धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ। **मेरी पुत्री मैत्रेयी और पुत्र तथ्य को मैं ढेर सारा आशीर्वाद देना चाहूंगी क्योंकि मेरी पुस्तक के महत्वपूर्ण संपादन के कार्य में दोनों का ही बहुत सहयोग रहा है**। मेरी विद्यार्थी विमला, रानू सोनी और भाविका गुलाटी को मैं ढेर सारा आर्शीवाद देती हूँ। इस पुस्तक के लेखन में उनका हर संभव प्रयास रहा है। सूरज करण शर्मा जिन्होंने बहुत ही सफाई के साथ पुस्तक के टंकण का कार्य किया उनका भी मैं धन्यवाद प्रेषित करती हूँ। मेरे प्रत्येक विद्यार्थी और मेरे जीवन से जुड़े प्रत्येक व्यक्ति का मैं आभार व्यक्त करती हूँ। ''

विषय सूची

योग की परिभाषा और इतिहास 1
वेद और योग का तादात्म्य 5
उपनिषद – आध्यात्मिक चिंतन के आधार 10
अष्टांग योग – आठ महत्वपूर्ण सोपान मार्ग 14
सत्व, रज और तम प्रकृति के तीन मूलभूत गुण..........................22
पंच प्राण वायु (जीवन की ऊर्जा) 25
कुंडलिनी (सात चक्रों की ऊर्जा) 28
भक्ति योग : एक आध्यात्मिक यात्रा 34
ज्ञान योग – साधना का मार्ग 38
कर्म योग : कर्म के माध्यम से आत्मसाक्षात्कार की दिशा में एक यात्रा...41
राजयोग – सभी योगों का सम्राट..45
मंत्र योग : आत्मिक और आध्यात्मिक उन्नति के लिए एक साधन..48
ध्यानयोग : शांति और आत्मज्ञान की ओर एक यात्रा 51
हठ योग – भारतीय योग परंपरा का एक महत्वपूर्ण अंग 55
योग वशिष्ठ – जीवन की कठिनाईयों से मुक्ति का मार्ग 58
सांख्य दर्शन में योग का स्वरूप 61
बौद्ध दर्शन (आत्मदीपो भव) 66
जैन दर्शन में योग 70
योग में मुद्राओं की उपयोगिता 73
योगिक षट्कर्म...88
प्राणायाम – श्वासों का एक अदभुत विज्ञान 102
आसन 114

योग की परिभाषा और इतिहास

योग शब्द संस्कृत की युज् धातु से बना है जिसका अर्थ है, जोड़ना।

आध्यात्मिक दृष्टि से देखा जाए तो आत्मा का परमात्मा से मिलन ही योग है। चित्त अंतःकरण का एक भाग है। चित्त में जो संस्कार होते हैं उनका आवागमन होता रहता है और उन पर निरोध ही योग है।

युज् धातु के संदर्भ में सबसे महत्वपूर्ण अर्थ समाधि से लिया जाता है अर्थात् योग समाधि की अवस्था है जिसमें चित्त पूर्ण एकाग्र हो जाता है। इसलिए कहा गया है **–''युज् समाधौ''** समाधि दो प्रकार की होती है सबीज समाधि और निर्बीज समाधि। समाधि वह अवस्था है जब कर्म के फलों में आसक्ति नहीं रहती है। चित्त् की वृत्तियां, संस्कार और वासनाएं पूर्णतया समाप्त हो जाते हैं जब साधक इस अवस्था तक पहुंच जाता है तो उसे परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है। युज् धातु के संदर्भ में ही इसे ''युजिर् योगे'' से परिभाषित किया गया है जिसका अर्थ है जोड़ना। ''युज् संयमेन'' द्वारा समझाया गया है कि संयम की अवस्था ही योग है और अपने चित्त पर संयम रखने पर ही योग सिद्ध होता है।

धातु के संदर्भ में समझने के पश्चात् जो महत्वपूर्ण परिभाषा है वह महर्षि पंतजलि की दी गई है – ''योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'' अर्थात् हमारे चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है। अंतःकरण के चार भाग होते हैं मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त। चित्त, सत्व, रज और तम से मिलकर बना है। तीनों ही गुणों का प्रभाव चित्त पर देखा जाता है। सत्व गुण की प्रधानता होने पर वह प्रकाशशील होता है। रजोगुण की प्रधानता होने पर उसमें चंचलता आती है और तम गुण के प्रधान होने पर वह अंधकार से ग्रस्त रहता है। चित्त को समझने के पश्चात् अब इसकी वृत्तियों को जानना जरूरी है। चित्त की पांच वृत्तियां होती हैं।

"प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः"। (योग दर्शन)

अर्थात् प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति।

गीता में श्रीकृष्ण ने कर्मों में कुशलता को ही योग की संज्ञा दी है। योग से हमारे कर्म निश्चल और सात्विक होते हैं।

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्।। 2/50।।

अर्थात् बुद्धि से युक्त व्यक्ति शुभ और अशुभ दोनों से मुक्त हो जाता है। इसलिए योग में लग जा क्योंकि इससे ही कर्मों में कुशलता आती हैं।

योगस्थ : कुरू कर्माणि सड्गं त्यक्त्वा धनञय।
सिद्धयसिद्धयोंः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।।2/48।।

हर परिस्थिति में समान रहने की अवस्था भी श्रीकृष्ण ने योग के रूप में प्रचारित की है। खुशी में भी बहुत ज्यादा खुश नहीं होना और दुख में भी बहुत ज्यादा दुखी नहीं होना योग है। सुख–दुख, लाभ–हानि, जय–पराजय हर द्वंद्व की स्थिति में समान रहना ही योग है।

योग के इतिहास के विषय में कई मत है परंतु वेदों में इसकी प्रधानता देखी गई है इससे यह सिद्ध होता है कि यह हजारों वर्ष पुरानी विधा है। योग के प्रथम वक्ता के रूप में हिरण्यगर्भ है और आधुनिक वक्ता महर्षि पंतजली को माना गया है। महाभारत में सांख्य व योग के वक्ता का वर्णन मिलता है –

सांख्यस्य वक्ता कपिलः परमर्षि स उच्वते।
हिरण्यगर्भों योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः।।

अर्थात् सांख्य के वक्ता कपिल और योग के वक्ता हिरण्यगर्भ है।

श्रीकृष्ण श्रीमद् भागवत गीता में कहते हैं –

इमं विवस्वते योग प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवे ऽब्रवीत्।।

अर्थात् मैने इस अविनाशी योग को सूर्य से कहा था, सूर्य ने अपने पुत्र वैवस्वत मनु से और मनु ने अपने पुत्र राजा इक्ष्वाकु से कहा। इस प्रकार कहा जा सकता है कि सृष्टि की उत्पत्ति केसमय ही योग का भी प्रादुर्भाव हुआ ऐसा कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। भगवान शिव को आदियोगी कहा गया है। सप्त ऋषियों द्वारा भी यह ज्ञान चारों दिशाओं में प्रचारित प्रसारित किया गया इसके भी साक्ष्य पाए गए हैं।

योग के इतिहास को 6 कालों में बांटा जा सकता है –

1. **पूर्व वैदिक काल –** यह काल लगभग 3000 ईस्वी पूर्व का है। सिंधु घाटी सभ्यता इसी काल में आई और इस समय योग की कई मुद्राएं पत्थरों पर उकेरी गई थी इसके कई साक्ष्य मिले है। विभिन्न शारीरिक मुद्राएं व आसन इस काल में योग के प्रत्यक्ष प्रमाण है।
2. **वैदिक काल –** 3000 ईस्वी पूर्व से 500 ईसा पूर्व का काल वैदिक काल कहा गया है। इस काल में यज्ञ को बहुत महत्व दिया गया और वेदों का प्रादुर्भाव भी इसी काल में हुआ है। यज्ञ के बिना किसी भी विद्वान का कोई भी कर्म सिद्ध नहीं होता है, ऐसा ऋग्वेद में कहा गया है।
3. **पूर्व शास्त्रीय काल –** यह काल 500 ईसा पूर्व से 200 ईसा पूर्व तक का है। इस काल में उपनिषद्, महाभारत, गीता का उद्‌भव हुआ इन ग्रंथों में योग शब्द का बहुत अधिक प्रयोग हुआ है। योग को बहुत महत्व दिया गया है। इन ग्रंथों में ज्ञान योग, भक्ति योग, कर्म योग, राज योग की जानकारी प्राप्त होती है। जैन व बौद्ध धर्म में भी योग का उत्थान काल यही रहा है।
4. **शास्त्रीय काल –** इस काल का समय 200 ईसा पूर्व का है। इसी काल में योग दर्शन का प्रादुर्भाव हुआ इसमें योग की बिखरी परंपरा को वेदों से इकट्ठा कर यह ग्रंथ रचा गया। महर्षि पंतजलि इस ग्रंथ के प्रणेता है। इन्हीं के बाद योग का प्रचलन बढा तथा कई योग संस्थाएं, पीठ तथा आश्रमों का निर्माण होने लगा जिनमें योग की शिक्षा दी जाने लगी।

5. **मध्यकाल** – 200 ईसा पूर्व से 500 ईस्वी तक का समय मध्यकाल है। हठयोग इसी काल का है परंतु कई विद्वानों में इसमें भी मतभेद है। इस काल में षट्क्रियाओं द्वारा शरीर की स्वच्छता का ध्यान रखा गया है तथा प्राणायाम द्वारा मन की शुद्धता पर बहुत बल दिया गया है।

6. **आधुनिक काल** – दसवीं से 11वीं शताब्दी तक का यह काल रहा है। हठ प्रदीपिका और घेरंड संहिता का भी यही काल कहा गया है। इसमें समकालीन, भक्ति योग और वर्तमान भी शामिल है। भक्ति योग के समय संत रविदास, कबीरदास जी तथा मीराबाई जैसे संत इसी काल में हुए। समकालीन समय में महर्षि रमण, स्वामी रामकृष्ण परमहंस तथा विवेकानंद जैसे अनेक महात्माओं ने अपना प्रभाव दिखाया। वर्तमान में भी कई संत ऐसे है जो योग का निरंतर प्रचार प्रसार कर रहे हैं।

वेद और योग का तादात्म्य

वेद शब्द विद् धातु से बना है जिसका शाब्दिक अर्थ है – दिव्य वाणी से सुना गया सत्य ज्ञान। यह ज्ञान स्वयं ईश्वर द्वारा ऋषियों को दिया गया था। सृष्टि के आरंभ में अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा जैसे ऋषियों को वेदों का ज्ञान प्राप्त हुआ और उन्होंने इस ज्ञान का प्रचार प्रसार किया।

वेद विश्व के सबसे प्राचीन ग्रंथ है और यूनेस्को ने इन्हें वर्ल्ड हेरिटेज की संज्ञा दी है।

योग के प्राचीन वक्ता हिरण्यगर्भ है और आधुनिक वक्ता महर्षि पंतजली को माना गया है। वेदों में योग का स्वरूप स्पष्ट नहीं दिखाई देता परंतु उन्हें ध्यान से पढने पर हमें यह ज्ञात होता है कि वेदों में योग का महत्वपूर्ण स्थान है और अष्टांग योग को यहां विशेष स्थान दिया गया है। वेद इस विश्व में ज्ञान–विज्ञान के भंडार है जिनमें योग, चिकित्सा, आयुर्वेद, विज्ञान, गणित, यज्ञ उपासना और कर्मकांड जैसे कई विषयों का ज्ञान हमें प्राप्त होता है। वेदों में चार प्रकार के साहित्य मिलते हैं –

1. **संहिता** – इनमें मंत्रों का संकलन है। चारों वेद इसी के अंतर्गत आते है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद।
2. **ब्राह्मण** – इनमें यज्ञ आगादि की चर्चा की गई है।
3. **आरण्यक** – वन या जंगल के मध्य जो ज्ञान प्राप्त किया गया वह आरण्यक है।ऐसा ज्ञान जो एकांत अवस्था में एकाग्रचित होकर प्राप्त किया गया। इनमें भी यज्ञ आगादि के द्वारा शुद्धि की प्रक्रिया का वर्णन है।
4. **उपनिषद्** – गुरू के निकट उनके चरणों में बैठकर जो ज्ञान प्राप्त किया गया वह उपनिषद के रूप में समाहित है।

मुक्तिकोपनिषद मे उपनिषदों की कुल संख्या 108 बताई गई है, जिसमें 20 ऐसे उपनिषद है जो योग से जुडे है।

ऋग्वेद – यह प्रथम और प्राचीन वेद है। ऋक् का अर्थ है ऋचाऐं। ऐसा ज्ञान जिसमें ऋचाओं के रूप में सभी देवताओं की प्रार्थना और स्तुतियां की गई है वह ऋग्वेद में ही प्राप्त होता है।

यस्माध्यते न सिद्धयति यज्ञोविपश्चितश्चन।
से धीनांयोगमिन्वति ।।

ऋग्वेद में कहा गया है कि विद्वानों का कोई भी काम यज्ञ के बिना सिद्ध नहीं होता है। ऋग्वेद में वायु चिकित्सा का वर्णन मिलता है जिसमें आसन, प्राणायाम और मानस ध्यान को विशेष महत्व दिया गया है इसमें स्तुतियों के द्वारा विभिन्न देवताओं का गुणगान किया गया है और गणित, रसायन, खगोल, भूगोल ज्योतिष, औषधि, प्रकृति, इतिहास आदि की जानकारी प्राप्त होती है। ऋग्वेद में ही च्यवन ऋषि को पुनः युवा करने की प्रक्रिया का भी वर्णन मिलता है। ऋग्वेद की पांच शाखाएं हैं – शाकल, वाश्कल, अश्वलायन, शाखायन व मंडूकायन।

यजुर्वेद – यह ऋग्वेद के बाद का वेद है। यजुर्वेद में स्वतंत्र आध्यात्मिक मंत्र बहुत कम हैं यह गद्यात्मक है। यजु का अर्थ है यज्ञ। यह एक कर्मकांड ग्रंथ है जिसमें यज्ञों के विषय में पूरी जानकारी मिलती है। यजुर्वेद के अंतर्गत उत्तर वैदिक युग की राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक जीवन की जानकारी भी हमें प्राप्त होती है और इसमें तत्वज्ञान का पूर्ण वर्णन किया गया है।

यजुर्वेद की दो शाखाएं हैं – **कृष्ण यजुर्वेद और शुक्ल यजुर्वेद।**

सामवेद – साम का अर्थ है– गान अर्थात् संगीत।

ईश्वर का वंदन उनकी उपसना और आध्यात्मिक उन्नति का ज्ञान हमें सामवेद से ही होता है। इसमें ऋग्वेद की ऋचाओं का संगीतमय निरूपण किया गया है। इसे संगीत शास्त्र का मूल भी कहा जाता है।

अर्थववेद –अथर्ववेद में रहस्यमयी विद्या की जानकारी दी गई है। इसमें तंत्र–मंत्र, टोना–टोटका का वर्णन मिलता है। आयुर्वेद का पूरा–पूरा ज्ञान भी हमें इसी वेद में मिलता है विभिन्न प्रकार की जडी बूटियों और उनके प्रभाव का वर्णन यहां किया गया है और इसी कारण इसे ब्रह्म वेद भी कहा गया है।

वेदों में भी अष्टांग योग का महत्व बताया गया है। मुख्यतः यदि देखा जाए तो वेदों में यम और नियम पर बहुत बल दिया गया है।

अहिंसा के विषय में कहा गया है – **मां हिंसीः पुरूष जगत। यजु. 16/3**

अर्थात् योग के उपासकों को अहिंसा का पालन करना चाहिए। ऋग्वेद में भी कहा गया है कि जो व्यक्ति हिंसा नहीं करते हैं, सदाचारियों को प्रोत्साहित करते हैं, वे हमेशा विजयी होते हैं। **सत्य** के लिए यहां पर ऋत् शब्द का प्रयोग किया गया है। सत्य को मृदु वाणी का भी आधार तत्व बताया गया है।

जिव्हा अग्रे मध्यमे जिव्हा मूल म्धुलकम। .... अथर्ववेद

अर्थात् मेरी वाणी के अग्रभाग पर जिव्हा के मूल में तथा मन और बृद्धि में सदा मधुरता बनी रहे। अस्तेय का अर्थ होता है चोरी नहीं करना परंतु वेदों में बताया गया है कि अभाव की स्थिति होने पर भी प्रबंधन कैसे किया जाए यह महत्वपूर्ण है। **अस्तेय** के लिए वेदों में वंचक, दस्यु, स्तेय जेसे शब्दों का प्रयोग कई बार किया गया है। **ब्रह्मच**र्य का अर्थ है तपस्या। ब्रह्म की प्राप्ति जिनका लक्ष्य है वे ही ब्रह्मचारी होते है। ब्रह्मचर्य के विषय में ऋग्वेद में 24 वर्ष की आयु तक ब्रह्मचर्य के पालन के विषय में कहा गया है।

अपरिग्रह का अर्थ है जिन वस्तुओं की हमें आवश्यकता भी नहीं है उन्हें अपने चारों ओर इकट्ठा करके रखना। वेदों में परिग्रह शब्द का बार–बार प्रयोग हुआ है। जिसके द्वारा समझाया गया है कि जिन वस्तुओं की आवश्यकता है उन्हें ही अपने पास रखना है। जीवन में शारीरिक और मानसिक रूप से अनावश्यक संकलन नहीं होना चाहिए। **संतोष** के विषय में वेदों में तोषमाना, संतोषवाची जैसे शब्दों

का प्रयोग हुआ है। ऋग्वेद में कहा गया है कि कृषि आदि कार्यों के पूर्ण परिश्रम के पश्चात् जितना भी फल प्राप्त हो उसमें संतुष्ट रहना चाहिए।

तप के विषय में सामवेद में कहा गया है कि तपस्वी व्यक्ति ही परमात्मा को प्राप्त कर सकता है। **स्वाध्याय** के विषय में यजुर्वेद में कहा गया है। **ओउम् कृतो स्मर। 40/15**

अर्थात् ओउम् का जाप निरंतर करते रहना चाहिए। ईश्वर की स्तुति और प्रार्थना को निरंतर हर पल करते रहने को ही ईश्वर प्रणिधान की संज्ञा दी गई है। इस प्रकार वेदों में नियम को अलग–अलग स्थानों पर समझाया गया है। वेदों में आसन को दैनिक जीवनचर्या के रूप में बताया गया है। यहां पर आसन का स्वरूप आध्यात्मिक लाभ की प्राप्ति है।

सामवेद के 89 सूक्त में प्राणायाम के विषय में कहा गया है कि प्राणायाम का अभ्यास करने वाले व्यक्तियों को ईश्वर की प्राप्ति बहुत ही सरलता से हो जाती है। प्रत्याहार के विषय में वेद कहते हैं कि इंद्रियों को अपने वश में करते हुए ज्ञान की प्राप्ति करें।

भद्रं कर्णभिःशृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। 25/21 यजुर्वेद।

इस मंत्र के द्वारा प्रार्थना की गई है कि कानों से हम अच्छे भावों को सुने और आंखों से हम मंगलमय दृश्य देखें।

धारणा के लिए यजुर्वेद में गायत्री मंत्र को बल दिया गया है।

ध्यान के विषय में यजुर्वेद में कहा गया है कि जिस प्रकार सभी नदियों का जल समुद्र में मिल जाता है उसी प्रकार चित् भी एक मात्र ईश्वर में एकाग्र हो जाना ध्यान है।

यदग्ने स्यामहं त्वंत्वंवाघास्याअहम् स्युष्टेसत्या इहाशिषः। ऋग्वेद 8/44/23

इस मंत्र में ईश्वर से असम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति की प्रार्थना की गई है। आत्मा का परमात्मा में विलीन हो जाना ही समाधि की स्थिति बताई गई है।

इस प्रकार हम कह सकते है कि वेदों में योग का स्वरूप गूढ, प्रचीन और बहुआयामी है, जो केवल शारीरिक अभ्यास नहीं है, बल्कि एक समग्र साधना है जो व्यक्ति को उच्चतम चेतना तक ले जाती है।

उपनिषद - आध्यात्मिक चिंतन के आधार

उपनिषद प्राचीन भारतीय वैदिक साहित्य का एक महत्वपूर्ण भाग है। वैदिक ज्ञान तीन भागों में बंटा हुआ है, कर्मकांड, उपासना कांड और ज्ञान कांड। कर्मकांड में यज्ञ, हवन, तप नियमित किए जाने वाले कार्यो के रूप में इनका वर्णन मिलता है। उपासनाकांड में विभिन्न प्रकार की उपासनाओं के विषय में जानकारी प्राप्त होती है किसी व्यक्ति को किस प्रकार से और किसकी उपासना करने पर एक निश्चित फल की प्राप्ति होने वाली है इसका पूरा वर्णन इस कांड में मिलता है। कर्मकांड और उपासना कांड के लक्ष्य का बोध कराने के लिए ज्ञान कांड का विवेचन किया गया। उपनिषद् वैदिक वाङ्गमय का अंतिम भाग है। इन्हें वेदांत भी कहा जाता है। वेद का ज्ञान कांड होने के कारण इनमें जिज्ञासाओं के अविद्या तत्व को दूर करने के व्याख्यान मिलते है।

उपनिषद शब्द उप+नि+सद्(षद्लृ) धातु से मिलकर बना है। उप का अर्थ है, समीप। नि का अर्थ है, निश्यपूर्वक और षदृलृ का अर्थ है, बैठना। इस प्रकार उपनिषद का अर्थ हुआ गुरू के समीप बैठकर प्राप्त किया गया ज्ञान।

प्रत्येक उपनिषद का किसी न किसी वेद से संबंध है। मुक्तिकोपनिषद् के अनुसार कुल 108 उपनिषद है। इनमें भी लगभग 20 उपनिषद है जो योग से जुडे है, और 10 उपनिषद ही है, जिनकी प्रामाणिकता सिद्ध है।

ईश–केन–कठ–प्रश्न–मुंड–मांडुक्य–तित्तिरः।

ईशावास्योपनिषद –

इस उपनिषद का नामकरण इसके प्रथम मंत्र में ही समाहित है।

ॐ ईशावास्यमिदम् सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ।।

ईशावास्योपनिषद शुक्ल यजुर्वेद का 40वां अध्याय है और इसमें कुल 18 मंत्र है इसमें कर्म निष्ठा, विद्या और अविद्या, आत्म भाव और संपूर्ण जगत में ब्रह्म की उपयोगिता को दर्शाया गया है।

केनोपनिषद –

केनोपनिषद सामवेद की तवलकार ब्राह्मण के अंतर्गत आता है। इस उपनिषद के दो प्रकार के भाष्यों का प्रतिपादन शंकराचार्य जी द्वारा किया गया है – 1. पदभाष्य 2. वाक्य भाष्य । इसमें चार खंड है जो गद्य के रूप में है। इसमें गुरू शिष्य परंपरा द्वारा ईश्वर की विशेषताओं का वर्णन किया गया है। यहीं यज्ञ रूप में ब्राह्मी चेतना के प्राकट्य का वर्णन मिलता है। मनस इंद्रिय और अंतःकरण तथा सत्य का निरूपण इसी के विषय हैं।

कठोपनिषद – यह उपनिषद् कृष्ण यजुर्वेद की कठ् शाखा के अंतर्गत आता है। इसमें दो अध्याय और प्रत्येक में तीन–तीन वल्लियां हैं। इसमें योग की परिभाषा, आत्मा की प्रकृति और आत्मबोध के महत्व को दर्शाया गया है। इस उपनिषद में यम और नचिकेता का संवाद है।

प्रश्नोपनिषद् – यह अथर्ववेद की पिप्लाद शाखा के ब्राह्मण ग्रंथ का एक भाग है। इसमें कुल 6 प्रश्न अध्याय हैं। इस उपनिषद् के अंतर्गत पिप्लाद ऋषि द्वारा सुकेशा, सत्यवान, आश्वलायन, भार्गव, कात्यायन और कबन्धी इन छह ऋषियों के ब्रह्म विद्या संबंधी प्रश्नों का उत्तर दिया गया है। इसी कारण इसका नाम प्रश्नोपनिषद दिया गया। इसमें प्रश्न उत्तर के रूप में ब्रह्म तत्व का निरूपण किया गया है। इसमें तीन प्रश्न अपरा और शेष तीन प्रश्न परा विद्या से

संबंधित है। इसके अंतर्गत ब्रह्म, प्राण का स्वरूप और उत्पत्ति, स्वप्न दर्शन, ऊँकार की उपासना तथा षोडशकला पुरूष के स्वरूप का विवेचन किया गया है।

मुंडकोपनिषद – यह अथर्ववेद की शौनक शाखा के अंतर्गत आता है। इसमें कुल तीन मंडक हैं और प्रत्येक में दो–दो खंड हैं। इसके अंतर्गत परा–अपरा विद्या, ब्रह्म विद्या, स्वार्थ कर्मों की निंदा, तप गुरू भक्ति तथा सृष्टि के मूल को दर्शाया गया है। इसमें वेदांत शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग हुआ है। इसके मंत्र **''सत्यमेव जयते नानृतम्''** का सत्यमेव जयते वाक्य भारत के राष्ट्रीय चिन्ह पर अंकित है।

माण्डूक्योपनिषद – यह अथर्ववेद के ब्राह्मण भाग के अंतर्गत आता है। इसमें कुल 12 मंत्र हैं और उनमे चेतना की चार अवस्थाएं और उनका ओमकार के साथ संबंध बताया गया है। चेतन तत्व की चार अवस्थाएं जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय का विवेचन है।

तैत्तिरीयोपनिषद – यह कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय आरण्यक के 7, 8,9 अध्याय का भाग है। इसमें पंचकोश की अवधारणा का वर्णन किया गया है। यह तीन वल्लियों में विभाजित है–शिक्षावल्ली, ब्रह्मानंद वल्ली और भृगु वल्ली।

शिक्षावल्ली में उपासना के प्रकार, शिष्य के शिष्टाचार और गुरू संबंधी व्यवहारों का निरूपण किया गया है।

ब्रह्मानंद वल्ली में ब्रह्म विद्या को समझाया गया है। भृगुवल्ली में पंचकोश और विवेक को, वरूण और भृगु के संवाद के रूप में बताया गया है।

ऐतरेयोपनिषद – यह ऋग्वेद के ऐतरेय आरण्यक का भाग है। इसमें सृष्टि, जीव और ब्रह्म का निरूपण है।

छान्दोग्योपनिषद – यह सामवेद की तवलकार शाखा के छांदोग्य ब्राह्मण के अंतिम आठ अध्याय के अंतर्गत आता है। इसमें उद्गीथ ज्ञान की अवधारणा और शांडिल्य विद्या के विषय में बताया गया है। आध्यात्मिक ज्ञान की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है। इसके अंतर्गत

विभिन्न विद्याओं, उद्गीथ, ओंकार तथा तीनों आश्रमों का वर्णन है। ''गायत्री'' और ''सर्वम् खल्विंद'' ब्रह्म का निरूपण यहीं किया गया है।

बृहदआरण्यकोपनिषद – यजुर्वेद की काण्वी शाखा के वाजसनेय ब्राह्मण के अंतर्गत आता है। इसमें आत्मा और ज्ञान योग की अवधारणा तथा प्राण की श्रेष्ठता और सृष्टि संबंधी सिद्धांत, आत्म स्वरूप और राजा जनक के दरबार में याज्ञवलक्य के द्वारा सभी ब्रह्मवादियों को पराजित करने का वर्णन किया गया है। सृष्टि विषयक तथा परलोक संबंधी तत्वों का विवेचन भी यही किया गया है।

श्वेताश्वतरोपनिषद – यह कृष्ण यजुर्वेद के श्वेताश्वर ब्राह्मण का एक भाग है। इसमें छः अध्याय और 110 पद्य है। इसके अंतर्गत शैव धर्म का प्रतिपादन किया गया है। इसके द्वितीय अध्याय में योग का विशद विवेचन किया गया है। उपासना कांड में विभिन्न प्रकार की उपासनाओं के विषय में जानकारी प्राप्त होती है किसी व्यक्ति को किस प्रकार से और किसकी उपासना करने पर एक निश्चित फल प्राप्ति होने वाली है इसका पूरा वर्णन इस कांड में मिलता है। इस उपनिषद को कुछ ही विद्वानों द्वारा मान्यता प्राप्त है।

अष्टांग योग - आठ महत्वपूर्ण सोपान मार्ग

अष्टांग योग शरीर तथा मन को स्वस्थ एवं एकाग्र करने का एक ऐसा मार्ग है जो जीवन जीने की कला सिखाता है। यह आठ महत्वपूर्ण योग के अंग है, जिनमें सामाजिक और आध्यात्मिक उन्नति देखने को मिलती है। महर्षि पंतजलि ने अपने ग्रंथ योग दर्शन में इन आठ अंगों का विस्तार से वर्णन किया है। इन आठ अंगो को जीवन में महत्वपूर्ण स्थान देते हुए स्वामी विवेकानंद ने राजयोग के रूप में इन्हें स्वीकार किया है। जैन दर्शन, बौद्ध दर्शन आदि में भी इनकी प्रमाणिकता को स्वीकार किया गया है और इन्हें जीवन में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है । इन अष्टांग योगों में सामाजिक और आध्यात्मिक उन्नति देखने को मिलती है। महर्षि पंतजलि ने साधन पाद के 29वं सूत्र से अष्टांग योग की व्याख्या करना शुरू किया है। उनके अनुसार

यमनियमासनप्राणायामाप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावंगानि ।।29।।

अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये योग के आठ महत्वपूर्ण अंग है। इन्हें दो भागों मं बांटा गया है।

बहिरंग योग और अंतरंग योग।

1. **बहिरंग योग** –यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार इसी के अन्तर्गत आते हैं। इनके द्वारा समझाने की कोशिश की गई है कि समाज से जुडे रहने के लिए किस प्रकार के नियमों की आवश्यकता होती है और शरीर को किस प्रकार स्वच्छ व स्वस्थ रखें इसकी प्रेरणा दी गई है।

2. **अंतरंग योग–** धारणा, ध्यान और समाधि को अंतरंग योग में स्थान दिया गया है। इनके द्वारा मन और विचारों पर पूर्ण संयम किया जाता है। इन आठ अंगों का वर्णन निम्न प्रकार से है –

1. **यम – अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ।।** अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये यम कहे गये हैं। यम को सार्वभौमिक कहा गया है और इन्हें संयम के रूप में भी जाना जाता है, ये हमें भौतिक अनुशासन सिखाते हैं और समाज में रहते हुए नम्रता और अनुशासन का पालन किस प्रकार किया जाये यह सीख हमें इन्हीं के द्वारा मिलती है। यमों का अनुष्ठान जब सबके साथ सभी स्थानों पर और समान भाव से किया जाता है तो यह महाव्रत का रूप धारण कर लेते हैं।

क. **अहिंसा –** मन, वाणी और कर्म से किसी को भी हिंसा नहीं पहुंचाना अहिंसा की श्रेणी में आता हैं परन्तु इसमें एक बात ध्यान देने योग्य बात है कि यदि किसी प्रकार की हिंसा को हम देखते हैं और सही व्यक्ति का साथ न देते हुए उसे नजरअंदाज कर देते हैं वह भी हिंसा की ही श्रेणी में आता है अर्थात् कोई भी गलत कार्य होते हुए देखना भी हिंसा ही है। महर्षि पत**ञ्ज**लि कहते हैं कि जब अहिंसा सिद्ध हो जाती है तो साधक को द्वेष, वैर, ईर्ष्या जैसे भावों पर पूरी तरह से नियंत्रण हो जाता है और आस पास का वातावरण भी उन्हीं के अनुसार हो जाता है और उनके निकट कोई हिंसक जीव भी आ जाता है तो वो भी अहिंसा का पालन करने लगता है।

ख. **सत्य** – जैसा हमने देखा है वैसा ही कह देना सत्य है। मन और इन्द्रिय से प्रत्यक्ष देखकर, सुनकर या अनुमान के द्वारा जैसा अनुभव किया गया हो बिल्कुल वैसे ही भाव को प्रकट करना सत्य है। इसमें भी यह बात ध्यान देने योग्य है कि सत्य ऐसा नहीं होना चाहिए जो किसी को कष्ट पहुंचाये यदि हम किसी अंधे व्यक्ति को उसके सामने अंधा कहकर बुलायेंगे तो उसे कष्ट होगा और यह सत्य की श्रेणी में नहीं आयेगा।

जब सत्य सिद्ध होता है तो साधक में किसी प्रकार की कोई कमी नहीं रहती। साधक के द्वारा यदि किसी को वरदान, श्राप और आशीर्वाद दिया जाता है तो वह भी सत्य घटित होता है।

ग. **अस्तेय –** अस्तेय का अर्थ है चोरी नही करना। छल या अन्यायपूर्वक किसी का भी धन अपना लेना स्तेय है और जब ये कार्य नहीं किया जाये तो यह अस्तेय है। किसी जानकार व्यक्ति से भी पूछे बिना उनकी किसी भी वस्तु का उपयोग नहीं करना चाहिए।

जब अस्तेय की सिद्धि होती है तो साधक के मन में किसी भी दूसरी वस्तु की अभिलाषा नहीं रह जाती है। इसी कारण कई बार उनकी सच्चाई और ईमानदारी के कारण कई व्यक्ति अपनी कीमती वस्तुएं भी उन्हें रक्षा स्वरूप दे जाते हैं और पृथ्वी में जहां कहीं भी गुप्त स्थान में यदि कोई धन रखा हुआ है तो उसका ज्ञान साधक को होने लगता है।

घ. **ब्रह्मचर्य** – मन, शरीर और इन्द्रिय को अपने वश में रखना ब्रह्मचर्य की श्रेणी में आता है। किसी भी उत्तेजित दृश्यों को नहीं देखना चाहिए। कामादि बढाने वाले पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिए, ऐसे साहित्य को नहीं पढ़ना चाहिए जो विचारों में कामादि दोषों को प्रकट करने वाले हो।

ब्रह्मचर्य की सिद्धि से साधक के मन, बुद्धि, इन्द्रिय और शरीर में अभूतपूर्व शक्ति समाहित होती है। उन्हें ओज, तेज, बल और वीरता की वृद्धि होती है।

ड. **अपरिग्रह –** किसी भी प्रकार की उपभोग की सामग्री का संचय नहीं करना ही अपरिग्रह है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध आदि तन्मात्राओं से दूर रहना और मद, लोभ, मोह, क्रोध, ईर्ष्या, घृणा जैसी भावनाओं को मन में घर नहीं करने देना ही अपरिग्रह है। अनुपयोगी वस्तुएं जिनका कोई भी उपयोग नहीं हो उन्हें भी अपने घर में इकट्ठा नहीं करना चाहिए।

अपरिग्रह की प्रतिष्ठा होने पर पूर्व जन्म का भी विस्मरण हो जाता है, भौतिक वस्तुओं की लालसा खत्म हो जाती है और उन्हें पूर्वजन्म और भविष्य की भी जानकारी हो जाती है।

2. **नियम** – ये अष्टांग योग का दूसरा महत्वपूर्ण अंग है। नियम शारीरिक तप के साक्षी है। इनके द्वारा हमारे शरीर को पूर्णतया स्वच्छ करके स्वस्थ बनाया जाता है। इसे पांच भागों में बांटा गया है।

शौचसंतोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।।
यो.द. साधनपाद 32।।

अर्थात् शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान।

क. **शौच** – शौच का अर्थ है स्वच्छता जो हमारे शरीर और मन दोनों की होनी चाहिए। शौच दो प्रकार से होता है बाह्य शौच और आंतरिक शौच। बाह्य शौच का अर्थ है अपने शरीर को बाहरी रूप से स्वच्छ कर देना इसके लिए साबुन, मिट्टी इत्यादि का प्रयोग किया जाता है। आंतरिक शौच के द्वारा मन में पनप रहे ईर्ष्या, द्वेष, क्रोधादि जैसे विचारों को हटाया जाता है। शौच की सिद्धि हो जाने पर संसार के कर्मों में नित्यता नहीं रहती है और बुद्धि स्वच्छ और निर्मल होती है। इसके पालन से शरीर स्वस्थ होता है और चित्त शांत और प्रसन्न होता है। एकाग्रता बढ़ती है तथा इन्द्रियों पर नियंत्रण होता है।

ख. **संतोष** – पूर्ण पुरूषार्थ करने के पश्चात् जो भी मिले उसमें संतुष्ट हो जाना ही संतोष है। इसे इस प्रकार समझा जा सकता है कि परीक्षा में पास होने के लिए पूरी मेहनत करनी चाहिए उसके बाद कुछ भी फल मिले उसे शांति से स्वीकार कर लिया जाये। यहां पर परिश्रम को महत्व दिया गया है। जब संतोष की सिद्धि होती है तो सर्वोत्तम सुख की प्राप्ति होती है ऐसा महर्षि पत**ञ्ज**लि कहते हैं।

ग. **तप** – द्वन्दों को सह लेना ही तप है अर्थात् सुख–दुख, लाभ–हानि, जय–पराजय किसी भी प्रकार की परिस्थिति होने पर उसका सामना करते हुए एक समान बने रहना ही तप है। तप की सिद्धि होने पर साधक के रोग दूर होते हैं, आलस्य खत्म होता है उसके शरीर में बल और स्फूर्ति आती है। साधक दृढवान बनता है तथा धर्म और स्वाध्याय की तरफ बढ़ता है

अर्थात् इसके अभ्यास से शरीर और इन्द्रियों के मल का पूर्णतया नाश हो जाता है।

घ. स्वाध्याय – स्वाध्याय का अर्थ है, ऐसे ग्रंथों का अध्ययन करना जो मोक्ष की तरफ अग्रसर करने वाले हों। यह कार्य प्रतिदिन होना चाहिए, अपने आसपास हमेशा सत्संगी लोगों का साथ होना चाहिए। ऐसे लोगों से दूर रहें जो नकारात्मकता से भरे हों। इसका एक अर्थ यह भी होता है कि स्वयं का अध्ययन करें, प्रतिदिन इस पर विचार करें की हमने आज क्या सही और क्या गलत कार्य किया है और गलत कार्यों को कभी ना दोहराने का संकल्प लें। स्वाध्याय के प्रयोग से साधक को अपने ईष्टदेव के दर्शन होते हैं और साधक धार्मिक और विद्वान बन जाता है।

ड. ईश्वरप्राणिधान – ईश्वर में पूरी तरह से श्रद्धा का भाव रखना ही ईश्वर प्रणिधान है। अपने आपको ईश्वर को समर्पित कर देना उनके आगे दण्डवत हो जाना और उन्हें हर परिस्थिति में अपने पास होने का अहसास करना ही ईश्वर प्रणिधान है। ईश्वर प्रणिधान के द्वारा साधक ईश्वर को प्राप्त करता है, उसके द्वारा योग साधना में आने वाले विघ्नों का नाश होकर शीघ्र ही समाधि की स्थिति प्राप्त होती है साधक को परिणाम की चिंता नहीं रहती। साधक के उपर आने वाले विघ्नों का सम्पूर्ण भार ईश्वर स्वयं अपने पर लेते हैं।

3. **आसन** – आसन के विषय में महर्षि पत**ञ्ज**लि कहते हैं कि "**स्थिरसुखमासनम्**" जिस स्थिति में बिना हिले–डुले स्थिर भाव से बिना किसी पीड़ा के सुखपूर्वक बहुत समय तक बैठ सकें वह आसन है। महर्षि पत**ञ्ज**लि ने अष्टांग योगों में आसनों के कोई प्रकार नहीं बताये हैं। आसन प्रयत्न की शिथिलता और परमात्मा में पूर्ण चित्त को लगा देने से सिद्ध होता है। शरीर को सीधा व स्थिर करके सुखपूर्वक बैठ जाने के बाद सभी प्रकार की चेष्टाओं का त्याग कर देना प्रयत्न शिथिलता है। आसन के

सिद्ध हो जाने पर सर्दी, गर्मी, सुख, दुख आदि द्वन्दों का शरीर और मन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

4. **प्राणायाम – तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।। 49।।** प्राण वायु का शरीर में प्रवेश करना श्वास है और बाहर निकलना ही प्रश्वास है। जब आसन की सिद्धि हो जाती है तभी प्राणायाम का पूरा प्रभाव शरीर और मस्तिष्क पर होता है। महर्षि पत**ञ्ज**लि ने चार प्रकार के प्राणायामों का वर्णन किया है। प्राणायाम में तीन क्रियाओं का महत्व है।

1. पूरक–श्वास लेना,
2. कुम्भक –श्वास को रोके रखना,
3. रेचक –श्वास को बाहर निकाल देना।

बाह्यवृत्ति प्राणायाम – श्वास को बाहर निकालकर बाहर ही रोके रखना बाहय्वृत्ति प्राणायाम है। इस बात का भी इसमें ध्यान रखना चाहिए कि श्वास कहां आकर रूका है और कितने समय तक रोका गया है। बहुत अभ्यास के द्वारा इसे दीर्घकाल तक रोका जा सकता है।

आभ्यन्तरवृत्ति प्राणायाम – प्राण वायु को अपने भीतर ले जाकर उसे वही रोक लेना जब तक की सुखपूर्वक रोके रह सकें, यही आभ्यन्तर प्राणायाम है। अभ्यास के बल से यह दीर्घ और सूक्ष्म होता जाता है।

स्तम्भवृत्ति प्राणायाम– प्राण जहां पर है उसे वहीं रोक देना। यदि वह भीतर है या वह बाहर है किसी भी स्थिति में उसे वहीं पर रोक देना ही स्तम्भवृत्ति प्राणायाम है इसे कुम्भक प्राणायाम भी कहते हैं।

बह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः ।। यो.द. 2/51 ।। बाहरी और भीतर के विषयों चिंतन को त्याग कर प्राण बाहर निकल रहे हैं या भीतर जा रहे हैं अथवा कहीं ठहरे हुए हैं इस प्रकार की जानकारी को मन में न रखते हुए अपने ईष्ट के चिंतन में लगा देने से देश, काल और संख्या के बिना प्राणों की गति जहां रूक जाती है वहीं चौथा प्राणायाम है। यह पहले के तीन प्राणायामों से बिल्कुल भिन्न है इससे राजयोग की प्राप्ति होती

है और प्राणों की गति को रोकने का अभ्यास करते हुए प्राणों की गति का निरोध होता है।

जब प्राणायाम सिद्ध हो जाते हैं तो क्लेश दुर्बल हो जाते हैं, एकाग्रता बढ़ती है और मन में धारणा की योग्यता आ जाती है।

5. **प्रत्याहार – स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः।। यो.द. 2/54।।** इन्द्रियों का विषयों से पूर्णतः मुक्त हो जाना ही प्रत्याहार है। इसमें इन्द्रियों का **पंचतन्मात्राओं** में संयम हो जाता है। साधक जब इन्द्रियों के विषयों का त्याग करता है और चित्त को ध्येय में लगा देता है उस समय इन्द्रियां विषयों की ओर न जाते हुए पूर्णतः ईश्वर में विलीन हो जाती हैं यह प्रत्याहार की स्थिति है। प्रत्याहार के सिद्ध होने पर साधक की इन्द्रियां उसके सर्वथा वश में हो जाती हैं।
6. **धारणा – देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।। यो.द. 3/1।।** किसी भी एक देश अर्थात् बिन्दु में अपने चित्त को लगा देना धारणा है। इसे दो प्रकार से समझा जा सकता है बाह्य धारणा –बाहर की वस्तुओं में अपने चित्त को लगा देना वृक्ष, दीपक, सूर्य और चन्द्रमा में एकाग्र होकर भी धारणा को सिद्ध किया जा सकता है और यही बाह्य धारणा कहलाती है। आंतरिक धारणा में भीतर स्थित किसी भी वस्तु में अपने चित्त को पूर्णतया लगा देना। कंठ, हृदय, चक्र विशेष पर चित्त को स्थिर कर देना यह आंतरिक धारणा है।
7. **ध्यान – तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ।। यो.द. 3/2।।** धारणा की स्थिति के समय को जब बढा दिया जाता है तो वह ध्यान की अवस्था होती है। अथात् किसी भी एक वस्तु पर अपना पूरा चित्त लगाकर बहुत लम्बे समय तक स्थिर हो जाना यही ध्यान है।
7. **समाधि – त्वदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः ।। यो.द. 3/3 ।।** ध्यान की प्रगाढ़ अवस्था ही समाधि की अवस्था होती है। जब ध्यान करते–करते चित्त ध्येयाकार में परिणत हो जाता है तब साधक को स्वयं का पूर्णतः अभाव हो जाता है और उस ईश्वर का ज्ञान होता है। यही ध्यान की अवस्था है। जब किसी

भी ध्येय पदार्थ में धारणा, ध्यान और समाधि की क्रिया एक साथ होती है तो उसे संयम कहा जाता है और यह साधक की एक महत्वपूर्ण अवस्था होती है। जब संयम की सिद्धि होती है तो साधक की बुद्धि अलौकिक ज्ञान से भर जाती है इसी को अध्यात्म प्रसाद कहा जाता है।

सत्व, रज और तम प्रकृति के तीन मूलभूत गुण

भारतीय दर्शनों विशेष रूप से सांख्य दर्शन में, सत्व, रज और तम इन तीन गुणों को प्रकृति के तीन मूलभूत तत्वों के रूप में देखा जाता है, जो संसार के सभी पदार्थों और चेतनाओं के आधारभूत गुणधर्मों का वर्णन करते हैं। ये गुण ब्रह्मांड के सभी जीव और पदार्थों में विभिन्न संयोजनों में उपस्थित होते हैं। ये सृष्टि इन्हीं तीन गुणों से बनी हुई है, ये गुण व्यक्ति के व्यक्तित्व, स्वभाव, मानसिकता और कार्यों पर गहरा प्रभाव डालते हैं। इन्हें समझना हमारे मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक विकास के लिए आवश्यक है।

1. **सत्व** – स्वभावतः सत्व का अर्थ होता है 'शुद्धता' 'ज्ञान' और संतुलन। यह गुण शांति, संतोष और स्पष्टता को दर्शाता है। सत्व गुण से व्यक्ति के जीवन में स्थिरता आती है, ज्ञान की प्राप्ति होती है और शांति की अनुभूति होती है। बुद्धि प्रबल होती है और विवेक ज्ञान प्राप्त होता है। सत्व का लक्षण है कि यह प्रकाश युक्त होता है, स्वच्छ और निर्मल होता है। सत्व से बुद्धि की प्रबलता होती है, जिससे स्पष्टता और ज्ञान की प्राप्ति होती है। यह मानसिक शांति और स्थिरता को प्रोत्साहित करता है।

सत्व गुण से व्यक्ति में धार्मिकता, नैतिकता और उच्चतर आदर्शों की ओर प्रवृत्ति होती है। यह गुण जीवन में सामंजस्य और संतुलन को बनाए रखने में सहायक होता है।

उदाहरण – किसी योगी या ऋषि में सत्व गुण की प्रधानता होती है, जो शांति, ज्ञान और उच्च नैतिक आदर्शों का पालन करते हैं।

2. **रजस** – स्वभावतः रजस का अर्थ है गतिशीलता, उत्साह और चेष्टा। यह गुण ऊर्जा, इच्छा और क्रियाशीलता का प्रतीक है। रजस गुण से व्यक्ति में गतिविधि, उत्साह और सांसारिक जीवन जीने की इच्छा होती है।

चंचलता इसका मुख्य लक्षण है। कभी–कभी यहां लोभ, क्रोध, मोह, ईर्ष्या जैसे भाव उभर कर आते हैं परंतु किसी को नुकसान पहुंचाने का उद्धेश्य इस गुण का नहीं है।

रजस से व्यक्ति में क्रियाशीलता, गतिशीलता और कर्म करने की प्रेरणा होती है।

यह व्यक्ति को उत्साहित और ऊर्जावान बनाता है। रजस गुण से व्यक्ति में इच्छाएं और लालसाएं प्रबल होती हैं, जिससे वह भौतिक सुख और सांसारिक सुखों की ओर आकर्षित होता है। यह मानसिक अस्थिरता और अधीरता का कारण भी बन सकता है।

उदाहरण – भौतिक सफलता की कामना हेतु कोई भी व्यक्ति लोभ, मोह, ईर्ष्या जैसे विकारों से ग्रसित होकर रज गुण प्रधान हो सकता है।

3. **तमस** – तमस का अर्थ होता है – अज्ञान, आलस्य और जड़ता। यह गुण अवरोध, निष्क्रियता और अज्ञानता का प्रतीक है। तमस गुण से व्यक्ति में नकारात्मकता, उदासी और अज्ञान की भावना होती है।

यह अंधकारमय और जड़ होता है। तमस गुण से व्यक्ति में आलस्य और निष्क्रियता की भावना होती है। यह अज्ञान, भ्रांति और अधंकार की स्थिति उत्पन्न करता है।

तमस व्यक्ति को मानसिक और शारीरिक रूप से निष्क्रिय बनाता है। यह गुण व्यक्ति को नकारात्मक सोच, अवसाद और निराशा की ओर ले जाता है।

उदाहरण – ऐसा व्यक्ति जिसमें सभी विकार समाहित रहते हैं जो हर समय दूसरों का बुरा चाहता है और गलत से गलत काम करते हुए भी संकोच नहीं करता है। ऐसे ही व्यक्ति तमस गुण की प्रधानता वाले होते हैं।

गुणों का सामंजस्य – हर व्यक्ति में ये तीनों गुण विभिन्न अनुपातों में मौजूद होते हैं और उनका व्यक्तित्व इन गुणों के संतुलन पर निर्भर करता है। योग के द्वारा आत्मसाक्षात्कार और आध्यात्मिक साधना के माध्यम से व्यक्ति अपने भीतर सत्व गुण को बढा सकता है, जिससे उसे मानसिक शांति, ज्ञान और संतुलन प्राप्त हो सकता है। वहीं, रजस और तमस गुणों को नियंत्रित कर, व्यक्ति अपनी इच्छाओं, लालसाओं और अज्ञानता को कम कर सकता है।

इन तीनों गुणों का अध्ययन भारतीय दर्शन में आत्म साक्षात्कार और आत्म परिवर्तन के मार्ग के रूप में किया जाता है, जिससे व्यक्ति आत्मिक उन्नति की दिशा में अग्रसर हो सकता है। योग, ध्यान और सात्विक आहार का अपने जीवन में समावेश कर सत्व गुण को बढ़ाया जा सकता है। इच्छओं, मोह, आकर्षण और लोभ को सीमित कर इसे संतुलित रखा जा सकता है। आलस्य और नकारात्मकता को दूर करने के लिए सक्रियता और सकारात्मक आदतें अपनानी चाहिए। अपनी दिनचर्या में योग और ध्यान को स्थान देते हुए सत्व गुण को बढ़ाते हुए अपने लक्ष्य को प्राप्त करना चाहिए।

पंच प्राण वायु (जीवन की ऊर्जा)

भारतीय योग और आयुर्वेद में पांच प्राणों का महत्वपूर्ण स्थान है, जिन्हे जीवन की पांच मुख्य शक्तियों के रूप में भी देखा जाता है यह प्राण हमारे शरीर में विभिन्न शारीरिक और मानसिक क्रियाओं को नियंत्रित करते हैं।

प्राणों को हम श्वास और प्रष्वास के द्वारा भी जान सकते हैं, मुख्यतः प्राण एक ऐसी वायु कही गई है जो शरीर को जीवित रखने का कार्य करती है और उसमें ऊर्जा का संचार करती है। इन्हें पंच प्राण वायु भी कहा गया है। यह पांच प्रकार की वायु होती है जो शरीर में विचरण करती रहती है और हर एक वायु का क्षेत्र निर्धारित है। प्राणों के द्वारा ही मनुष्य का जीवन क्रियाशील रहता है और इन्हीं के द्वारा वह मृत्यु को प्राप्त होता है। प्राणायाम के द्वारा प्राणों को आयाम दिया जाता है और इन्हें मजबूत बनाया जाता है। हमारे शरीर के भीतर जो पांच विशेष प्रकार की वायु प्रवाहित होती रहती है वही पांच प्राणों के रूप में स्थित है। जो साधक प्राणों को श्वास प्रश्वास के द्वारा जान लेता है वह मानसिक और शारीरिक रूप से सुदृढ होता हुआ ईष्वर को प्राप्त करने में समर्थ होता है। आज के सन्दर्भ में देखा जाए तो प्राण वायु का दूसरा रूप ऑक्सीजन का पूर्ण रूप से शरीर में प्रवाह ही स्वस्थ शरीर का प्रतीक होता है। यह शरीर को जीवित रखने का कार्य करती है।

प्राणतत्व की महिमा के विषय में अर्थववेद में कहा गया है –

प्राणों विराट प्राणो देष्ट्री प्राणं सर्व उपासते।

प्राणोहसूर्यश्चन्द्रमाः प्राण माहुः प्रजापतिम्।।

अर्थात् प्राण विराट है, सबका प्रेरक है। सभी इसकी उपासना करते हैं तथा प्राण ही सूर्य, चंद्रमा व प्रजापति है। प्राण वायु का सुचारू संचालन आत्मविश्वास को दर्शाता है।

मुख्य प्राण पांच प्रकार के कहे गये हैं और दस इनके उपप्राण होते हैं।

प्राणोऽपान : समानश्चोदानव्यानौ तथैव च।

नागः कूर्मश्च कृकलोदेवदत्तो धनञ्जयः ।।घेरंड संहिता।।

भावार्थ – प्राण, अपना, समान, उदान व व्यान ये पाँच प्राण होते हैं। नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त व धनंजय ये पाँच उपप्राण होते है।

हृदि प्राणो वहेन्नित्यमपानो गुदामण्डले।

समानो नाभिदेशे तु उदानः कण्ठमध्यगः।।

व्यानो व्याप्त शरीरे तु प्रधानाः पञ्च वायवः।

प्राणाद्या पञ्च विख्याता नागाद्या पञ्चवायवः।। 61 ।।

भावार्थ – प्राण हृदय प्रदेश में, अपान गुदा प्रदेश में, समान नाभि प्रदेश में, उदान कण्ठ प्रदेश में व व्यान सम्पूर्ण शरीर में गमन अथवा स्थित होता है।

पांच प्राण निम्न है।

प्राण – इसका स्थान गले से लेकर हृदय तथा फेफड़ों तक होता है। यह रक्त संचार का कार्य सुचारू रूप से करती है शरीर में ऑक्सीजन प्रवाहित करने का कार्य भी प्राण वायु द्वारा ही किया जाता है। यह ऊर्जा का संचार करती है और जीवनी शक्ति प्रदान करती है। श्वसन तंत्र को मजबूती प्रदान करती है। प्राण वायु का उप प्राण नाग कहा गया है और इसका कार्य है डकार लाना तथा श्वास नली को फैलाना और सिकोडना।

अपान वायु– यह वायु गुदा से नाभि तक व्याप्त रहती है। मल मूत्र, पसीना और गर्भाषय के कार्यों को नियंत्रित करती है। शरीर के अपषिष्ट

पदार्थों को बाहर निकलने में मदद करती है। प्रजनन प्रणाली के कार्य भी इसी वायु के द्वारा किए जाते है। अपान वायु का उप प्राण 'कूर्म' है। इसका कार्य पलकें झपकाना और आंसू लाना है।

समान वायु—समान वायु नाभि से हृदय तक प्रवाहित होता है। मुख्यतः पेट के मध्य भाग में स्थित होती है और पाचन क्रिया को नियंत्रित करती है। यह जठराग्नि को प्रदीप्त कर पाचन तंत्र को मजबूत बनाता है जो भी कुछ बाहर से ग्रहण किया जाता है वह इसी वायु के कारण होता है जैसे अन्न, जो हम बाहर से भीतर की तरफ ग्रहण करते हैं जल, शिक्षा, श्वास आदि क्रियाएं इसी के कारण होती हैं। यह शरीर में संतुलन बनाए रखती है। समान वायु का उप प्राण 'कृकल' है। छींक आदि लाने का कार्य इसी के द्वारा किया जाता है।

उदान वायु— यह वायु कंठ से सिर तक प्रवाहित होती है। वाणी को सही रखने का कार्य करती है और थायराइड ग्रंथी को स्वस्थ रखती है तथा बोलने और सोचने की क्रियाओं को नियंत्रित रखती है। भोजन नली के द्वारा भोजन को नीचे तक भेजने का कार्य भी इसी के द्वारा किया जाता है। यह हमारे सोचने समझने की शक्ति और आत्मा की उन्नति में भी सहायक है। इस वायु का उप प्राण 'देवदत्त' है। शरीर में निद्रा और आलस्य का कारण यही है।

व्यान वायु—यह शरीर के कण—कण में व्याप्त रहती है। पूरे शरीर पर इसका नियंत्रण होता है। यह पूरे शरीर में प्रवाहित होती रहती है। यह वायु एक प्राण को दूसरे प्राण से जोड़े रखने का कार्य करती है। यह रक्त संचार और नसों के कार्य को नियंत्रित रखती है तथा शरीर के सभी अंगों में ऊर्जा के प्रवाह का कार्य करती है। शरीर के समस्त कार्यकलाप और चेष्टाएं इसी के द्वारा संपादित की जाती हैं। इसका उपप्राण 'धनंजय' कहा गया है। मृत्यु पश्चात् भी यह कुछ समय तक शरीर में विद्यमान रहती है।

योग और प्राणायाम के माध्यम से इन वायु को संतुलित और सक्रिय किया जा सकता है प्राणायाम के अभ्यास से शरीर में प्राण वायु की मात्रा बढ़ती है और यह शरीर और मन को स्वस्थ और संतुलित रखता है।

कुंडलिनी (सात चक्रों की ऊर्जा)

कुंडलिनी एक ऊर्जा है जो प्रत्येक व्यक्ति के भीतर स्थित होती है। इसे एक सोते हुए सांप के रूप में कल्पना की जाती है, जो रीढ़ की हड्डी के निचले हिस्से में मूलाधार चक्र में सोई हुई रहती है। जब कुंडलिनी जागृत होती है, तो यह ऊर्जा ऊपर की ओर चढ़ती है और विभिन्न चक्रों से होकर सहस्त्रार चक्र तक पहुँचती है। इस प्रक्रिया को कुंडलिनी जागरण कहते हैं। कुंडलिनी के विषय में महर्षि घेरंड कहते हैं –

मूलाधारे आत्मशक्ति : कुण्डली परदेवता।
शयिता भुजगाकारा सार्द्ध त्रिवल यान्विता।। 49।।

अर्थात् मनुष्य शरीर के मूलाधार चक्र में सर्वश्रेष्ठ देवता के रूप में आत्मा की प्रमुख शक्ति जो कुण्डलिनी शक्ति है, साँप की भाँति साढ़े तीन लपेटे लगाकर सोई हुई रहती है।

कुंडलिनी को मोक्ष का द्वारा बताते हुए कहा गया है–

उद्घाटयेत् कपाटञ्च यथा कुञ्चिकया हठात् ।
कुण्डलिन्याः प्रबोधेन ब्रह्मद्वारं प्रभेदयेत् ।। 105 ।।

अर्थात् जिस प्रकार चाबी के द्वारा बंद द्वार को बिना किसी प्रकार की मेहनत के आसानी से खोल दिया जाता है। ठीक उसी प्रकार योगी बिना किसी ज्यादा प्रयास के कुण्डलिनी शक्ति के द्वारा मोक्ष के द्वार को खोल लेते हैं।

कन्दोर्ध्वंकुण्डलीशक्तिः सुप्तामोक्षाययोगिनाम्।

बन्धनायचमूढानांयस्तांवेत्तिसयोगवित् ।। 107।।

अर्थात् कन्द के ऊपर कुण्डलिनी शक्ति सुप्त अवस्था में पड़ी हुई है। उस कुण्डलिनी शक्ति की साधना करके ही साधक मोक्ष को प्राप्त करता है।

कुंडलिनी जागरण के लिए शरीर में स्थित सातों ही चक्रों को ऊर्जा प्रदान की जाती है। सात चक्र शरीर के भीतर स्थित ऊर्जा के मुख्य केन्द्र है।

इन सभी चक्रों के रंग, तत्व, स्थान और मंत्र निर्धारित हैं। इन सातों ही चक्रों का वर्णन इस प्रकार है–

मूलाधार चक्र –इसे रूट चक्र भी कहा जाता है। यह रीढ़ की हड्डी के निचले हिस्से में गुदा और जन्नेंद्रिय के बीच में स्थित होता है। इसका रंग लाल है, इसका तत्व पृथ्वी और मंत्र लं है। इस चक्र की ज्ञानेंद्रिय नासिका और कर्मेंद्रिय गुदा है और यह भूमि, सुरक्षा और अस्तित्व से संबंधित चक्र है। जब यह चक्र सुचारू कार्य करता है तो मनुष्य स्वाभिमानी, ऊर्जा से ओत–प्रोत, निडर, अच्छा वक्ता, सर्व विधाओं को जानने वाला और आनंदचित् होता है। यह व्यक्ति में आध्यात्मिकता को विकसित करता है।

जननांग, गुर्दे, आतें और पेट से संबंधित अंगों पर इसका नियंत्रण रहता है। इस चक्र में किसी भी प्रकार का विकार होने पर अभिमान, डर और नकारात्मकता का प्रभाव दिखाई देता है। मोटापा, बवासीर, गुर्दे संबंधि कई रोग उत्पन्न होते हैं। पैरों में दर्द मांसपेशियों में खिंचाव और प्रजनन संबंधि परेशानियां आती हैं।

इस चक्र को बल देने के लिए सेतुबंधासन, हलासन, सर्वांगासन, मूलबंध, कपालभाति, नाडी शोधन प्राणायाम का नित्य अभ्यास करना चाहिए और शुद्ध सात्विक आहार करना चाहिए।

स्वाधिष्ठान चक्र– इस चक्र को स्केरल चक्र भी कहा जाता है। यह नाभि के नीचे स्थित होता है। इसका स्थान पेडू और रंग सिंदूरी है, इसका तत्व जल और मंत्र वं है। इस चक्र की ज्ञानेंद्रिय रसना और कर्मेंद्रिय लिङ्गं है। यह आनंद, कामुकता और रचनात्मकता से

संबंधित है। यह चक्र जब सुचारू कार्य करता है तो व्यक्ति योगियों में श्रेष्ठ, रचनात्मक, मोह रहित, प्रेम से युक्त, अहंकार रहित, सभी की मदद करने वाला और सामर्थ्यवान होता है। मूत्राशय, जननांग, गुर्दे पर इस चक्र का नियंत्रण रहता है। संसार चक्र को आगे बढ़ाने में इसका महत्वपूर्ण योगदान है। इस चक्र में किसी भी प्रकार का विकार उत्पन्न होने पर व्यक्ति अहंकारी हो जाता है। सही और गलत का निर्णय लेने में असक्षम होता है। जननांग, मूत्राशय संबंधी रोग, यकृत संबंधित रोग होने की संभावना रहती है। इस चक्र को बल देने के लिए हलासन, नौकासन, धनुरासन, अर्ध मत्स्येंद्रासन जैसे आसन, कपालभाति, नाडीशोधन, प्राणायाम और मूलबंध का अभ्यास करना चाहिए।

मणिपुर चक्र–इसे सोलर पिलक्स चक्र भी कहा जाता है। इसका स्थान नाभि है, इसका तत्व अग्नि और मंत्र लं है और रंग पीला है। इस चक्र की ज्ञानेंद्रिय चक्षु है, और यह शक्ति, इच्छाशक्ति और आत्मपहचान से संबंधित है। यह चक्र जब सुचारू कार्य करता है तो व्यक्ति चतुर और रचनात्मक वाणी से युक्त, उच्च संकल्प शक्ति और सकारात्मकता से भरपूर होता है। आतें, लीवर और प्लीहा पर इसी चक्र का नियंत्रण रहता है। इस चक्र में किसी भी प्रकार का विकार उत्पन्न होने पर व्यक्ति गलत बोलने वाला, नकारात्मक, भावनात्मक संबंधों से दूर और स्वार्थी होने लगता है और ईर्ष्या, घृणा, तृष्णा और विषाद से भर जाता है। पाचन तंत्र से संबंधित परेशानियां, फैटी लीवर आदि पेट से संबंधित बीमारियां उत्पन्न होती है। इस चक्र को बल देने के लिए वज्रासन, पश्चिमोत्तानासन, भूनमन आसन, उष्ट्रासन, हलासन सर्वांगासन नौकासन, विपरीत नौकासन और धनुरासन, उडयान बंध, कपालभाति शीतकारी प्राणायाम का नित्य अभ्यास करना चाहिए।

अनाहत चक्र – इसे हार्ट चक्र भी कहा जाता है। यह हृदय क्षेत्र में स्थित होता है। इसका रंग हरा है, इसका तत्व वायु और मंत्र यं है। इस चक्र की ज्ञानेंद्रिय त्वचा और कर्मेंद्रिय कर (हाथ) है। यह प्रेम, करूणा और संबंधों से संबंधित चक्र है। जब यह चक्र सुचारू कार्य

करता है तो व्यक्ति सच्चे प्रेम और हर्ष से युक्त होता है। उसमें आत्मीयता का भाव होता है। हर परिस्थिति में शांत रहने वाला होता है। श्वसन तंत्र फेफडे और हृदय पर इस चक्र का पूर्ण नियंत्रण रहता है। इस चक्र में किसी भी प्रकार का विकार होने पर मनुष्य में ईर्ष्या, नफरत और उदासी के भाव उभर कर आते है और व्यक्ति के स्वभाव में क्रूरता की झलक दिखाई देती है। रक्त से संबंधित परेशानियां, हृदय से संबंधित परेशानियां, बी.पी, अस्थमा आदि रोग उत्पन्न होते है। इस चक्र को बलशाली बनाने के लिए गौमुखासन, उष्ट्रासन शशकासन, भुजंगासन, धनुरासन, भस्त्रिका, शीतली, शीतकारी, नाडी शोधन प्राणायाम का नित्य अभ्यास करना चाहिए।

विशुद्धि चक्र – इसे थ्रोट चक्र भी कहा जाता है। यह गले के क्षेत्र में स्थित होता है। इसका स्थान कंठ और रंग नीला होता है। इस चक्र की ज्ञानेंद्रिय कर्म है और कर्मेंद्रिय वाक् है। इसका तत्व आकाश और मंत्र हं है। यह संचार, सत्य और अपनी आवाज को प्रकट करने से संबंधित है। वाणी पर इस चक्र का पूरा–पूरा नियंत्रण रहता है। जब यह चक्र सुचारू कार्य करता है तो व्यक्ति काव्य रचना में समर्थ ज्ञानवान, कवि और अच्छा वक्ता होता है। वह सर्वहितकारी, चिरंजीवी और तेजस्वी होता है। मुंह, कान, जीभ, फेफडे और गले से संबंधित अंग इसी चक्र के अन्तर्गत कार्य करते है। इस चक्र में किसी भी प्रकार का विकार उत्पन्न होने पर व्यक्ति की वाणी कठोर होती है, वह असत्यवादी और गलतफहमी में जीने वाला होता है। हकलाने की समस्या, अस्थमा, गले से संबंधित परेशानियां, थायराइड, कान, नाक और आंख से संबंधित परेशानियां इसी चक्र में विकार के कारण होती है। इस चक्र को बल देने के लिए उज्जाई, भ्रामरी प्राणायाम, जालंधर बंध, ब्रह्म मुद्रा, मत्स्यासन, सर्वांगासन, उष्ट्रासन भुजंगासन, धनुरासन गर्दन के हल्के व्यायामों का नित्य अभ्यास करना चाहिए।

आज्ञा चक्र – इसे थर्ड आई चक्र भी कहा जाता है। यह भौंहों के बीच में स्थित होता है। इसका स्थान भ्रू मध्य और रंग श्वेत होता है और यह अंतर्ज्ञान, ज्ञान और आंतरिक दृष्टि से संबंधित चक्र है।

इसका तत्व महतत्व और मंत्र ओउम् (प्रणव) है। यह चक्र इडा, पिंगला और सुषुम्ना को ऊर्जा प्रदान करता है। इस चक्र के प्रभाव से व्यक्ति बुद्धि और ज्ञान से परिपूर्ण होता है वह आत्मज्ञान को पूर्ण रूपेण जान लेता है और परमात्मा को प्राप्त करने में समर्थ होता है वह संपूर्ण संसार को एकता के सूत्र में बांधने वाला और सत्य आनंद को प्राप्त करने वाला होता है। पिट्यूटरी ग्रंथि और मस्तिष्क इसी चक्र के नियंत्रण में कार्य करते है। यदि चक्र में कोई विकार उत्पन्न हो जाता है तो व्यक्ति मानसिक बीमारियों से गिर जाता है। मांसपेशियों संबंधी परेशानियां होती है। भ्रम, शक जैसे दोषों से युक्त होता है। नस, नाड़ियों से संबंधित दोष भी इसी में विकार के कारण उत्पन्न होते है। इस चक्र को बल देने के लिए ध्यान, त्राटक और मुद्राओं का नित्य अभ्यास करना चाहिए।

सहस्त्रार चक्र – इसे क्राउन चक्र भी कहा जाता है। यह सिर के शीर्ष पर स्थित होता है। इसका स्थान मस्तक है, यह रंग और तत्वों से बहुत ऊपर का चक्र है और यह आध्यात्मिकता, चेतना और समाधि से संबंधित है। साधक यहां तक पहुंच कर सत्य और उस परम ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। साधक महान शक्तियों से युक्त हो जाता है, शून्य के भाव में प्रवेश कर जाता है तत्वातीत को प्राप्त कर लेता है। यहां तक पहुंचने पर शरीर और मन दोनों ही व्यक्ति के नियंत्रण में आ जाते है। यहां तक पहुंच कर व्यक्ति अमर, मुक्त, आकाशगामी और समाधि युक्त हो जाता है पीनियल और पिट्यूटरी ग्रंथि इसी चक्र के नियंत्रण में होती है। यदि इसमें कोई विकार उत्पन्न होता है तो व्यक्ति सीमित सोच वाला, एकाग्रता की उसमें कमी पाई जाती है। सही और गलत का ज्ञान उसे नहीं हो पाता। उच्च से भी उच्च शक्तियों तक पहुंचाने वाला यह चक्र है। इस चक्र को मजबूती देने के लिए प्राणायाम, ध्यान और प्रणव का सहारा लिया जाता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि चक्र व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्थिति को प्रभावित करते हैं। इन चक्रों को संतुलित और समन्वित रखने के लिए योग, ध्यान और प्राणायाम

जैसी तकनिकों का उपयोग किया जाता है। कुंण्डलिनी जागरण और चक्र साधना से व्यक्ति अपने भीतर की आदिशक्ति और ज्ञान का अनुभव कर सकता है।

चक्रों को इस चार्ट के द्वारा आसानी से समझा जा सकता है।

चक्र का नाम	बीज मंत्र	रंग	पंखुडियां	तत्व	देवता
मूलाधार चक्र	लं	लाल	चार	पृथ्वी	गणपति
स्वाधिष्ठान चक्र	वं	नारंगी	छः	जल	विष्णु और लक्ष्मी
मणिपुर चक्र	रं	पीला	दस	अग्नि	ब्रह्मा / रूद्र
अनाहत चक्र	यं	हरा	बारह	वायु	शिव और शक्ति
विशुद्धि चक्र	हं	आसमानी	सोलह	आकाश	ईशान
आज्ञा चक्र	शं / ऊँ	नीला	दो	मन	शिव / ओंकार
सहस्त्रार चक्र	ऊँ	बैंगनी / श्वेत	एक हजार	सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड	शिव

साधक सभी मंत्रों की साधना करते हुए अपनी ऊर्जा को नीचे से ऊपर की तरफ प्रवाहित करते है और कुण्डलिनी जागरण में सफलता प्राप्त करते हैं तथा परमात्मा को प्राप्त करने में समर्थ रहते है।

भक्ति योग : एक आध्यात्मिक यात्रा

योग के चार प्रमुख पथ बताए गए है – कर्म योग, भक्ति योग, ज्ञान योग और राजयोग।

भक्ति योग – इन चार प्रमुख योगों में से एक महत्वपूर्ण योग है, जो प्रेम और समर्पण के माध्यम से ईश्वर की प्राप्ति का मार्ग है। इसका उद्धेश्य भक्त को भगवान के साथ एकीकृत करना और उसकी कृपा प्राप्त करना है। भक्ति योग का मार्ग सरल और सुलभ है और इसे सभी उम्र, जाति और लिंग के लोग अपना सकते हैं। भक्ति ईश्वर के प्रति अगाढ़ प्रेम और श्रद्धा की प्रतीक है अपने आराध्य में पूरी तरह लीन हो जाना और उन्हें अपना सर्वस्व समर्पित कर देना ही भक्ति है। भक्ति योग भावना प्रधान है और इसमें परामात्मा को अनंत निराकार व दयालु माना गया है। भक्ति का मार्ग हमें अहंकार, स्वार्थ और माया से मुक्त कराता है और हमें दिव्य प्रेम और शांति की ओर ले जाता है। भक्ति योग में भक्त को आत्म संयमी, अहिंसावादी, ईमानदार, निश्चलता जैसे गुणों से युक्त बताया गया है।

गीता में श्रीकृष्ण भक्ति मार्ग को उत्तम बताते हुए कहते हैं कि जो भक्त योग के द्वारा मुझे याद करते हैं वे मोक्ष को प्राप्त होते हैं :

ये तो सर्वाणि कर्माणि मयि सन्नस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते।।6।।
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसारगरात्।
भवामि न चिरात्पार्थ मययावेशितचेतसाम्।। 7।।

अर्थात् अपने सारे कार्यों को मुझमें अर्पित करके अविचलित भाव से मेरी भक्ति करते हुए जो भक्त मेरी पूजा करते है और अपने चित्त

को मुझमें लगाकर निरंतर मेरा ध्यान करते है, हे पार्थ ! मैं उन्हें जन्म और मृत्यु के सागर से पार कर देता हूँ।

श्रीकृष्ण ने गीता में दो प्रकार की भक्ति बताई है –

1. **सगुण भक्ति –** ईश्वर की मूर्त रूप में आराधना ही सगुण भक्ति है इसके अंतर्गत भक्त ईश्वर के आकार रूप आदि का ध्यान करते हुए भक्ति करता है अर्थात् जो प्रत्यक्ष है उसकी उपासना। ईश्वर के अलग–अलग स्वरूपों में अपना ध्यान केन्द्रित कर देना ही सगुण भक्ति है। जैसे राम के स्वरूप या कृष्ण की छवि को मन में उतारकर आराधना करना। सूरदास, तुलसीदास, मीराबाई जैसे कई भक्त इसी श्रेणी में आते है।
2. **निर्गुण भक्ति –** इस प्रकार की भक्ति में ईश्वर की कोई छवि नहीं होती है इसमें सिर्फ ध्यान के द्वारा ही ईश्वर को प्राप्त किया जाता है। सिर्फ प्रेम का भाव और नाम साधना रहती है। इसमें गुरू को ब्रह्म से भी ऊपर स्थान दिया जाता है। ध्यान के द्वारा ईश्वर को पूर्ण रूप से प्राप्त कर लेना ही निर्गुण भक्ति है। इसमें ईश्वर का स्वरूप निराकार है। जप और साधना ही इसमें महत्वपूर्ण होती है। महान संत नामदेव इसी भक्ति का उदाहरण है।

गीता में श्रीकृष्ण ने चार प्रकार के भक्त बताए है :–

1. **आर्त भक्त –** ये वे भक्त होते है जो केवल संकट के समय ही ईश्वर का स्मरण करते है। इस प्रकार के तुच्छ भक्त होते है।
2. **अर्थार्थी भक्त –** ऐसे भक्त किसी कामना की पूर्ति हेतु ही ईश्वर को याद करते हैं। भक्तों का यह प्रकार भी अच्छा नहीं बताया गया है।
3. **जिज्ञासु भक्त –** इस प्रकार के भक्त ईश्वर में जिज्ञासा रखने वाले होते है। ईश्वर का स्वरूप क्या है और उन्हें कैसे प्राप्त किया जा सकता है ? इसकी कामना उनके मन में होती है और इसके लिए वे प्रयासरत रहते हैं। ऐसे भक्त ईश्वर को प्यारे होते है।

4. **ज्ञानी भक्त** – यह भक्तों की सबसे उच्च कोटि है। यह ईश्वर को सब कुछ समर्पित कर देते है। ऐसे भक्त सिर्फ ईश्वर प्राप्ति में ही अपना सर्वस्व लगा देते हैं। ये श्रद्धा और ज्ञान से परिपूर्ण होते है और ये ही भक्त ईश्वर को सबसे प्रिय होते है।

भक्ति योग में 9 प्रकार की भक्ति बताई गई है :–

1. **श्रवण (सुनना) :** ईश्वर की महिमा और उनकी लीलाओं को सुनना। गुरू के द्वारा बताई गई ईश्वर की विशेषता और स्वरूप को सुनना ही श्रवण भक्ति है। राजा परीक्षित ने श्रवण भक्ति के द्वारा ही ईश्वर को प्राप्त किया है।
2. **कीर्तन :** भगवान के नाम और गुणों का कीर्तन करना। छंद, गीत आदि के माध्यम से उसके गुणों का बखान करना। चैतन्य महाप्रभु द्वारा की गई भक्ति ही कीर्तन शैली की ही है।
3. **स्मरण (स्मरण करना) :** निरंतर भगवान का स्मरण करना। उसी के स्वरूप और गुणों को याद करते रहना। स्वामी रामदास जी ने कहा है प्रभु का नाम स्मरण ही ईश्वर प्राप्ति का मार्ग है।
4. **पादसेवन (सेवा करना) :** भगवान के चरणों की सेवा करना। भरत द्वारा श्रीराम के वनवास से पुनः अयोध्या लौटने तक पादसेवन भक्ति ही की गई थी।
5. **अर्चन (पूजा) :** मन, वचन और कर्म द्वारा पवित्र सामग्री से ईश्वर का पूजन करना ही अर्चन है। अनुष्ठान समारोह इत्यादि में ईश्वर की जो पूजा की जाती है वह भी अर्चना के अंतर्गत आती है। इसमें मन और वचन की पवित्रता आवश्यक है। सूरदास जी कहते है इन्द्रियों को वश में रखकर मन, वाणि और कर्म से ईश्वर का अर्चन किया जाये। भगवान के प्रति प्रार्थना करना, उनकी अर्चना, प्रार्थना, आरती इत्यादि के माध्यम से करना।
6. **वंदन :** ईश्वर की वंदना करना और यज्ञ, मंत्रादि के द्वारा सभी आरोग्य की कामना करना। ईश्वर के मूर्ति स्वरूप को अपने हृदय में उतार कर उनकी पूजा करना । माता–पिता, गुरूओं का सम्मान व वंदन करते हुए उनकी आज्ञा का पालन करना

भी वंदन भक्ति के अंतर्गत आता है। अक्रूर जी द्वारा की गई भक्ति इसी श्रेणी की है।

7. **दास्य (दास बनाना) :** भगवान का सेवक बनना। भक्त हनुमान दास्य भक्ति का सबसे बडा उदाहरण है।
8. **साख्य (मित्रता) :** भगवान को मित्र रूप में मानना। कृष्ण के प्रति अर्जुन की भक्ति सखा भाव की भक्ति है।
9. **आत्मनिवेदन (समर्पण) :** स्वयं को पूरी तरह से भगवान को समर्पित कर देना। इसमें भक्त अपने हर कार्य को करने के लिए ईश्वर से प्रार्थना और निवेदन करते है। रामकृष्ण परमहंस स्वयं देवी काली के समक्ष आत्मनिवेदन किया करते थे।

भारत में भक्ति योग के कई उदाहरण मिलते हैं जैसे – भगवान कृष्ण की परम भक्त मीरा बाई जिन्होंने अपने जीवन को भक्ति में समर्पित कर दिया। संत कबीर ने अपने दोहों के माध्यम से भक्ति का प्रसार किया। संत तुकाराम भगवान विठ्ठल के महान भक्त जिन्होंने अभंग रचनाएं की। भक्ति योग एक सरल और प्रभावी मार्ग है जो हमें ईश्वर के प्रति प्रेम और समर्पण के माध्यम से आध्यात्मिक उन्नति की ओर ले जाता है। यह मार्ग हमें अहंकार और स्वार्थ से मुक्त कर सच्चे आनंद और शांति की प्राप्ति कराता है। भक्ति योग को अपनाकर हम अपने जीवन को सार्थक और पवित्र बना सकते है।

ज्ञान योग - साधना का मार्ग

योग साधना के चार प्रमुख योगों में ज्ञान योग का भी एक विशेष अपना स्थान है। ज्ञान मार्ग एक ऐसा योग का मार्ग है जो आत्म–ज्ञान और विवेक के माध्यम से मोक्ष प्राप्त करने की प्रक्रिया पर आधारित है। इसे अद्वैत वेदांत के प्रमुख दार्शनिकों द्वारा विशेष रूप से प्रतिपादित किया गया है। ज्ञान योग का मुख्य उद्धेश्य आत्म–साक्षात्कार है, इसके द्वारा व्यक्ति अपने सच्चे स्वरूप को पहचानता है और माया से मुक्त होता है। ''ज्ञया'' धातु में ल्युट् प्रत्यय करके ज्ञान शब्द बना है। जिसका अर्थ है, जानकारी अर्थात् किसी भी पदार्थ, विषय की पूर्ण जानकारी होना ही ज्ञान है। ज्ञान योग को दो भांगों में बांटा जाता हैं बहिरंग ज्ञान योग और अंतरंग ज्ञान योग।

बहिरंग ज्ञान योग

इसे चार भागों में बांटा जाता है –

1. **विवेक** : सत्य और असत्य की जानकारी हो जाना। नित्य और अनित्य के विषय में पूर्ण जानकारी हो जाना। गलत और सही में फर्क हो जाना। बुद्धि को उचित स्थान पर लगाकर उचित समय में, सही निर्णय लेना ही विवेक है। विवेक राग और द्वेष से परे होता है।
2. **वैराग्य** : सांसारिक वस्तुओं और सुखों से अनासक्ति अर्थात् मोह और आसक्ति का त्याग वैराग्य की अवस्था है। भौतिक वस्तुओं में किसी भी प्रकार की कोई आसक्ति नहीं होना। किसी भी प्रकार की कोई लालसा और तृष्णा का भाव मन में नहीं रहता है तब वैराग्य होता है।
3. **षट–संपत्ति** : छह प्रकार के विशेष गुण जो संपत्ति के रूप में देखे गए है।

शम– शम अर्थात् शमन करना। इंद्रियों को स्थिर करके अंर्तविषयों के प्रति लगा देना ही शम हैं।

दम – इंद्रियों के साथ अपने मन पर भी नियंत्रण करना, इनका दमन करना। अपने मन और इंद्रियों पर पूरी तरह से नियंत्रण कर लेना। किसी प्रकार का कोई विकार ना रहना ही दम की अवस्था है।

उपरति – सांसारिक भोगों से विरक्ति उपरति है। हर परिस्थिति में सम रहना अर्थात् खुशी में बहुत ज्यादा खुश ना होना और दुख में बहुत ज्यादा दुखी ना होना यही उपरति है।

तितिक्षा – धैर्य रखना। जो भी परिस्थितियां सामने आ रही है, उन्हें सहन करना।

श्रद्धा – ईश्वर के प्रति श्रद्धा रखना सभी का सम्मान करना, प्रसन्नता का भाव अपने में रखना।

समाधान – ध्यान की स्थिरता। जो भी कोई लक्ष्य निर्धारित किया है उसमें पूर्णतया लीन हो जाना।

4. **मुमुक्षत्व** – मोक्ष की तीव्र इच्छा। मोक्ष प्राप्ति के लिए विभिन्न प्रयोजन और योगादि मार्गो के द्वारा ईश्वर को प्राप्त करने में लग जाना।

अंतरंग ज्ञान योग

1. **श्रवण :** गुरू, विद्वान और बडों के वचनों को सुनकर उनके अनुसार अपने जीवन पथ पर अग्रसर होना।
2. **मनन :** जो ज्ञान सुनकर के प्राप्त किया है उसका चिंतन करना उसे अपने मन में धारण कर लेना।
3. **निदिध्यासन :** जो ज्ञान गुरू द्वारा सुना है और उसका मनन किया है उसे अपने जीवन में उतार लेना और उसी के अनुरूप कार्य करना निदिध्यासन है।
4. **साक्षात्कार :** ज्ञान के मार्ग पर चलते हुए और गुरू के बताए हर रास्ते का चयन करते हुए उसे स्वयं में उतार लिया जाता है उसके बाद स्वयं का साक्षात्कार हो जाता है और ईश्वर को प्राप्त करने का मार्ग खुल जाता है।

5. समाधि : पूरी तरह से स्वयं को जानकर ईश्वर को प्राप्त कर लेना, पूर्णतया ईश्वर में एकाग्र हो जाना ही समाधि है।

अद्वैत वेदांत और ज्ञान योग

अद्वैत वेदांत, जिसे आदि शंकराचार्य ने प्रतिपादित किया, ज्ञान योग का प्रमुख सिद्धांत है। अद्वैत वेदांत के अनुसार, ब्रह्म (सर्वोच्च वास्तविकता) और आत्मा (व्यक्तिगत आत्मा) एक ही है। इस ज्ञान को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को माया और अविद्या (अज्ञान) को त्यागना होता है।

ज्ञान योग, आत्म–ज्ञान के माध्यम से मोक्ष प्राप्त करने का मार्ग है। यह व्यक्ति को अपने सच्चे स्वरूप का अनुभव कराता है और जीवन के अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति की दिशा में मार्गदर्शन करता है। यह मार्ग विशेष रूप से बौद्धिक और चिंतनशील व्यक्तियों के लिए उपयुक्त है जो सत्य की खोज में लगे रहते हैं।

ज्ञान योग की साधना में समर्पण और दृढ़ संकल्प की आवश्यकता होती है, क्योंकि यह मार्ग कठिन और चुनौतीपूर्ण हो सकता है। लेकिन अंततः यह आत्म–ज्ञान और मोक्ष की प्राप्ति की ओर ले जाता है, जो जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य है।

कर्म योग : कर्म के माध्यम से आत्मसाक्षात्कार की दिशा में एक यात्रा

कर्म शब्द कृ धातु से बना है जिसका अर्थ है क्रिया। हम जो भी कार्य कर रहे है, वह हमारा कर्म है जैसे नित्य प्रतिदिन किये जाने वाले हमारे कार्य खाना पीना, उठना–बैठना, अध्यापन करना यहां तक की श्वास और प्रश्वास की क्रिया भी कर्म ही है। यहां यह ध्यान देने योग्य बात है कि जब कर्म निस्वार्थ भाव से किये जाते हैं तो वह कर्म योग का रूप ले लेते हैं अर्थात् ईश्वर में श्रद्धा रखते हुए अनासक्त भाव से जो कर्म किये जाते हैं वे कर्म योग हैं।

कर्म योग को साधना का एक ऐसा मार्ग बताया गया है जो साधक को आध्यात्मिक उन्नति व ईश्वर प्राप्ति कराने वाला होता है, जिसके माध्यम से हम स्वयं को पहचानकर परमात्मा को प्राप्त करते है। श्रीमद् भगवत गीता में श्रीकृष्ण ने कर्म योग की जानकारी विस्तृत रूप से दी है। इसका तीसरा अध्याय कर्म योग के नाम से ही है और इसमें कुल 45 श्लोक है। श्रीकृष्ण कहते है कि जैसा कर्म हम करते है वेसा ही फल मिलता है। हमारा द्वारा नित्य प्रतिदिन किये जाने वाले कर्म बहुत महत्वपूर्ण होते है ये ही आत्मा की गतिशिल होने का आभास कराते है। आज किये जाने वाला कर्म ही आगे चलकर आने वाले परिणामों से हमें जोडता है।

गीता के अनुसार कर्म तीन प्रकार के कहे गये हैं। कर्म, अकर्म और विकर्म।

कर्म आसक्त भाव से की गई कोई भी क्रिया या कार्य कर्म की श्रेणी में आते हैं। यह निम्न कोटि के होते हैं।

अकर्म अनासक्त भाव से किये गये कार्य अकर्म कहलाते हैं इन्हें ही निष्काम कर्म कहते हैं। ये उच्च कोटि के कर्म होते हैं। ये कर्म श्रीकृष्ण को सबसे प्रिय है।

विकर्म ये सबसे निम्न कोटि के कर्म होते हैं इन्हें तुच्छ कर्म भी कहा जाता हैं। आसक्त या अनासक्त भाव से किये गये सभी पाप कर्म विकर्म कहलाते हैं।

योग सूत्र में महर्षि **पतंजलि** ने कैवल्य पाद में चार प्रकार के कर्मो का वर्णन किया है :–

कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम् ।।

1. **शुक्ल कर्म –** ये कर्म व्यक्ति द्वारा किये जाने वाले वे कर्म हैं जिनसे पुण्य फल की प्राप्ति होती है और इन्हें तप, स्वाध्याय और ध्यान करने वाले साधकों के कर्म कहा जाता है। इनका फल सुख और आनन्द की प्राप्ति करवाने वाला होता है।
2. **कृष्ण कर्म –** व्यक्ति द्वारा किये जाने वाले वे सभी गलत कार्य जिनका परिणाम पाप होता है, इनको दुष्टों के कार्य कहा जाता है। हिंसा करना, झूठ बोलना, चोरी करना व विचार आदि करना ही कृष्ण कर्म हैं। इनसे दुखः और नर्क की प्राप्ति होती है।
3. **शुक्ल कृष्ण कर्म –** शुक्ल कृष्ण कर्म पाप व पुण्य से मिश्रित कार्यों को कहते हैं। इनको अच्छे व बुरे दोनो प्रकार के व्यक्तियों के कार्य कहा जाता है, कुछ कार्यों के करने से पुण्य की प्राप्ति होती है और कुछ कार्यों के करने से पाप की प्राप्ति होती है इसी कारण इन्हें मिश्रित कार्य भी कहा जाता है। इन कर्मों के फल भी मिश्रित ही होते हैं।
4. **अशुक्ल अकृष्ण कर्म –** अशुक्ल का अर्थ है पुण्य से रहित कार्य और अकृष्ण का अर्थ है पाप से रहित कार्य अर्थात् वह कार्य जिनके करने से न तो पुण्य मिलता है और न ही पाप मिलता है वे सभी इसी श्रेणी में आते हैं।

मीमांसा दर्शन में भी पांच प्रकार के कर्मों का उल्लेख मिलता है :–

1. **नित्य कर्म –** वे कर्म जो प्रतिदिन हमारे द्वारा किये जाते हैं।
2. **नैमित्तिक कर्म –** ये विशेष प्रकार से किये जाने वाले वे कार्य हैं जो विशेष मौके पर ही किये जाते हैं, जैसे– किसी त्यौहार पर नये रूप में किये जाने वाले कार्य।
3. **काम्य कर्म –** ये वे कर्म है जो किसी इच्छापूर्ति हेतु किये जाते हैं।
4. **निषिद्ध कर्म –** किसी को धोखा देने के लिए किये जाने वाले कार्य निषिद्ध कर्म होते है इन्हें पाप कर्म भी कहा जाता है।
5. **प्रायश्चित कर्म –** किसी भी प्रकार के बुरे कर्म किये जाने पर उसके प्रायश्चित हेतु किये जाने वाले कार्य इसी श्रेणी में आते हैं।

शास्त्रोक्त दृष्टि से भी कर्म तीन प्रकार के बताये गये है –

1. **संचित कर्म –** ये हमारे द्वारा किये जाने वाले अच्छे या बुरे दोनों ही प्रकार के वे कर्म होते हैं जो संचित रूप में रहते हैं। इन्हें कर्मों की पोटली के रूप में भी देखा जाता है या एक बैंक बैलेंस के रूप में भी इन्हें जाना जा सकता है जो भविष्य में हमारे साथ होने वाली अच्छी या बुरी घटनाओं का परिणाम हमें उसी के अनुसार देते हैं।
2. **प्रारब्ध कर्म –** प्रारब्ध कर्म हमारे पिछले जन्मों के वे कर्म हैं जो प्रकृति के द्वारा अगले जन्म में अच्छे या बुरे परिणाम के रूप में हमें दिये जाते हैं जैसे किसी व्यक्ति का बहुत बडे घर में जन्म लेना इस बात का एहसास कराता है कि उसके द्वारा किये गये प्रारब्ध कर्म बहुत ही अच्छे थे इसी कारण उसे इस जन्म में सारी सुखों की प्राप्ति होती है।
3. **क्रियमाण कर्म –** ये वो कर्म हैं जो हमारे द्वारा अभी वर्तमान में किये जा रहे हैं ये अच्छे या बुरे दोनों ही प्रकार के हो सकते हैं।

कर्म एक साधना है, जिसके मार्ग पर चलकर हम स्वयं को ईश्वर को समर्पित कर सकते हैं। कर्म योग यह नहीं कहता है कि कर्म का त्याग कर देना चाहिए अपितु यह सीखाता है कि अपने कर्तव्यों का पालन करना आवश्यक है लेकिन उसमें आसक्ति की भावना नहीं होनी चाहिए। कर्म योग व्यक्तिगत विकास और समाज सेवा दोनों के लिए महत्वपूर्ण है। यह व्यक्ति को स्वार्थ से ऊपर उठाकर समाज के कल्याण के लिए प्रेरणा देता है। यह जीवन जीने की एक विधा है जो व्यक्ति को कर्म के माध्यम से आत्मा की शुद्धि और ईश्वर की प्राप्ति की दिशा में प्रेरित करता है और एक समर्पित और संतुलित जीवन जीने की शिक्षा देता है।

राजयोग - सभी योगों का सम्राट

मन, शरीर और आत्मा पर नियंत्रण करने वाला एक ऐसा योग, जो सभी योगों का राजा कहा गया है, राजयोग है। घेरंड संहिता में कहा गया है –

मनोमूर्च्छा समासाद्य मन आत्मनि योजयेत्।
परमात्मनः समायोगात् समाधिं समवाप्नुयात्।। 16।।

भावार्थ :– साधक मनोमूर्च्छा की साधना करके अपने मन को आत्मा में केन्द्रित करे। इस प्रकार मन का परमात्मा से संयोग (मिलन) होने पर साधक को समाधि की प्राप्ति हो जाती है। यह राजयोग समाधि कहलाती है।

हठ प्रदीपिका में भी कहा गया है –

हठं विना राजयोगो राजयोगं विना हठः।
न सिद्धयति ततो युग्ममानिष्पत्तेः समभ्यसेत् ।।76।।

भावार्थ – हठयोग के बिना राजयोग की व राजयोग के बिना हठयोग की सिद्धि नहीं हो सकती। इसलिए जब तक निष्पत्ति अर्थात् समाधि की प्राप्ति नहीं हो जाती तब तक इन दोनों का अभ्यास करते रहना चाहिए। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि हठयोग और राजयोग एक दूसरे से जुड़े हुए विषय है। हठयोग का उद्धेश्य राजयोग की प्राप्ति ही है। जब मन पर पूरा नियंत्रण हो जाता है समाधि की अवस्था आ जाती है तो उसके बाद की स्थिति राजयोग है जो उसे ब्रह्म में एकात्म कर देती है। कह सकते हैं कि कैवल्य या मोक्ष की अवस्था ही राजयोग है। स्वामी विवेकानंद ने राजयोग को अष्टांग योग से जोडा है। अष्टांग योग में पहला स्थान यम का है। यम आत्म नियंत्रण सीखाने का कार्य करते हैं। यह नैतिक अनुशासन और समाज के प्रति कर्तव्यों को किस प्रकार

करना है यह भी हमें सिखाते हैं। यह पांच प्रकार के होते हैं– अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। यहां दूसरे स्थान पर नियम आते हैं और नियम अनुशासन में रहना सिखाते हैं तथा हमें व्यक्तिगत कर्तव्यों के प्रति सचेत करते हैं। नियम भी पांच प्रकार के होते हैं– शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान। आसन – शारीरिक व्यायाम हैं जो शरीर और मांसपेशियों को मजबूत बनाते हैं और स्वस्थ रखते हैं। प्राणायाम–श्वास प्रश्वास की क्रिया है। स्वामी विवेकानंद प्राणायाम के विषय में अपनी पुस्तक राजयोग में श्वेताश्वर उपनिषद् के एक भाष्य द्वारा समझाते हैं। प्राणायाम के द्वारा जिस मन का मैल धुल गया है वही मन ब्रह्म में स्थित होता है इसी कारण शास्त्रों में प्राणायाम का उल्लेख है। पहले नाडी शुद्ध करनी होती है तभी प्राणायाम की शक्ति आती है। अंगूठे से दाहिना नथुना दबाकर बायें नथुने से यथाशक्ति वायु अंदर खींचे फिर बीच में थोडी देर भी विश्राम किए बिना बायां नथुना बंद कर दाएं नथुने से वायु निकालें फिर दाएं नथुने से वायु ग्रहण करे और बाएं से निकाले दिनभर में चार बार उषा, मध्यान, सायं और निशीथ काल में यह क्रिया करे महीने भर में नाडी शुद्धि हो जाती है उसी के बाद प्राणायाम पर अधिकार होता है। प्रत्याहार – बाह्य पदार्थों से इन्द्रियों को अनासक्त कर लेना ही प्रत्याहार है।

धारणा –किसी भी एक बिंदु पर अपने ध्यान को एकाग्र कर लेना धारणा की स्थिति है। ध्यान –पूर्ण एकाग्रता की अवस्था। मन को पूरी तरह ईश्वर में लगा देना। धारणा का बहुत लंबे समय तक बने रहना ध्यान है। समाधि – पूर्ण ईश्वरानुभूति हो जाना तथा चित् का पूर्ण रूप से एकाग्र हो जाना। कैवल्य प्राप्ति ही समाधि है।

राजयोग के आठ चरण आंतरिक शान्ति, स्पष्टता, आत्म संयम और ईश्वरानुभूति कराते है। राजयोगियों की तीन मुख्य अवस्थाएं हैं।

1. **कल्पित अवस्था –** इसमें साधक अपनी साधना सवितर्क समाधि से शुरू करता है।
2. **मधुभूमि अवस्था –** सवितर्क समाधि के पश्चात् निर्वितर्क समाधि से साधना का प्रांरभ इसी अवस्था में होता है।

3. **मधुप्रतीक अवस्था** – यह अस्मितानुगत समाधि के बाद का अभ्यास होता है।

इस प्रकार राजयोग आत्मा और ईश्वर की एक सत्ता है। दोनों का जब एकीकरण हो जाता है वही राजयोग की अवस्था है। राजयोग एक ऐसी जीवन शैली है जो आत्मा के वास्तविक स्वरूप को समझने में मदद करती हैं। यह ध्यान मानसिक संतुलन और आत्मज्ञान का मार्ग है। यह एक ऐसा योग है, जिसमें आत्मा का अपने स्वामी परमात्मा से मिलन हो जाता है।

मंत्र योग : आत्मिक और आध्यात्मिक उन्नति के लिए एक साधन

मंत्रयोग भारतीय संस्कृति और योग परंपरा का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। इसमें मंत्रों का उच्चारण और ध्यान केंद्रित करके आत्मिक और आध्यात्मिक उन्नति की जाती है। मंत्रयोग के माध्यम से व्यक्ति अपने मन को शांति और स्थिरता प्रदान कर सकता है। मंत्रों की ध्वनि से आत्मा और शरीर में कम्पन्न होता है और व्यक्ति मानसिक और शारीरिक शांति को प्राप्त करता है।

मंत्र संस्कृत भाषा का शब्द है, मंत्र के विषय में कहा गया है **मननात् त्रायते इति मंत्र** : अर्थात् ऐसी शक्ति जो मन को बंधन से मुक्त कर देती है और हमारी रक्षा करती है। मंत्र एक ध्वनि, शब्द या वाक्यांश होता है, जिसे ध्यान या जाप के दौरान बार–बार दोहराया जाता है। इनका उच्चारण करने से ध्वनि तरंगें उत्पन्न होती हैं जो मन और शरीर पर सकारात्मक प्रभाव डालती हैं।

सभी मंत्रों में श्रेष्ठ मंत्र ''प्रणव'' को कहा गया है। महर्षि पंतजलि ने कहा है कि अगर ईश्वर को जानना है, उसके स्वरूप को जानना है तो ओउम् का उच्चारण कीजिए। **तस्य वाचकः प्रणव :** अर्थात् उस ईश्वर का लिए जाने वाला नाम प्रणव है। **''तज्ज्पस्तदर्थभावनम्''** मंत्र उच्चारण के लिए महर्षि पतंजलि कहते हैं कि मंत्र अर्थ सहित भाव के साथ बोला जाना चाहिए। ओउम् का महत्व वेदों में भी प्रतिपादित किया गया है।

मंत्र की साधना जप के द्वारा की जाती है। जप के निम्न प्रकार हैः–

सार्वभौमिक जप– इस प्रकार के जप का उच्चारण सभी के द्वारा एक साथ एक लय में किया जाता है, जैसे नित्य होने वाली आरती में या प्रार्थना में सभी एक साथ उच्चारण करते हैं यह सार्वभौमिक जप है।

उपांशु जप– इस प्रकार के जप में किसी को शिक्षा दी जाती है अर्थात् जिस प्रकार गुरू अपने शिष्य को मंत्र के विषय में समझाकर उसे किस प्रकार प्रयोग किया जाना चाहिए इसकी जानकारी देते हैं और तत्पष्चात् उस मंत्र का जाप किया जाता हैं।

पश्यंति जप– यह एक प्रकार का मानसिक जप है जो किसी भी दीपक को सामने रखकर या प्रतिमा के सामने किया जाता है। किसी भी प्रतिमूर्ति को सामने रख कर लगातार मन में उसी का स्मरण किया जाता है।

परा जप– यह भी एक तरह से मानसिक जप है, जो सिर्फ मन में किया जाता है परंतु इसमें कोई भी प्रतिमा समक्ष नहीं रहती है, मन में ही गुनगुनाते हुए आंतरिक ध्वनि चलती रहती है उसी के ऊपर पूरा ध्यान होता है।

नैमित्तिक जप–इसमें जप करने वाला व्यक्ति किसी और के कार्यों की सार्थकता के लिए जप करता है। करवाने वाला साधक निमित्त मात्र होता है जैसे किसी वस्तु की प्राप्ति के लिए साधक किसी पंडित के द्वारा मंत्र का जप करवाते है।

कामय जप– ऐसा जप जो किसी भी कामना की पूर्ति हेतु स्वार्थ वश किया जाए। भौतिक वस्तुओं की सुविधाओं हेतु किया जाए। इसमें नकारात्मकता ही नहीं सकारात्मकता की भावना भी हो सकती है जैसे विश्व शांति के लिए मंत्रों का उच्चारण किया जाए।

नित्य जप–जिन मंत्रों का उच्चारण प्रतिदिन किया जाता है।

निषिद्ध जप–ऐसा जप जो गलत भावना से किया जाए, किसी को नुकसान पहुंचाने के लिए किया जाए, जो गलत जगह बैठकर किया जाए, जिसमें एकाग्रता ना हो।

प्रायश्चित जप – गलत कार्य किए जाने पर या मन में गलत भावना होने पर उसके प्रायश्चित के लिए किए जाने वाला जाप।

अचल जप–ऐसा जप जो स्थिर रहकर किया जाता है किसी प्रकार की कोई शारीरिक और मानसिक चंचलता इसमें नहीं रहती। जि**व्हा**

नहीं हिलती है और अभ्यास और वैराग्य के द्वारा इसकी सिद्धि की जाती है।

चल जप– यह चलायमान स्थिति में किया जाता है। माला के साथ मंत्र का उच्चारण करते हुए चलते जाना ही चल जप है।

वाचिक जप–इसमें तेज बोलते हुए उच्चारण किया जाता है।

भ्रमर जप–विशेष रूप से मानसिक आरोग्यता की प्राप्ति इस जप के द्वारा होती है इसमें उच्चारण के समय भ्रमर के गुंजन की आवाज आती है।

प्रदक्षिणा जप – हाथ में माला लेकर परिक्रमा करते हुए मंत्रों का जाप करते रहना।

अजपा जप– इसमें श्वासों के साथ मंत्र की आवृत्ति की जाती है पूरा ध्यान श्वास के ऊपर लगा रहता है और जप चलता रहता है। बिना किसी खंडित अवस्था के निरंतर कई दिनों तक जप करते रहना ही अजपा जप है। यह महात्माओं के लिए सिद्ध जप है।

मंत्रयोग के द्वारा मंत्रों का नियमित जाप मन को शांत और स्थिर करता है। इससे तनाव और चिंता कम होती है। मंत्रयोग आत्मा की उन्नति के लिए एक महत्वपूर्ण साधन है। यह व्यक्ति को आध्यात्मिक अनुभवों की ओर ले जाता है। मंत्रों का जाप ध्यान की प्रक्रिया को सरल बनाता है। यह ध्यान की गहराई को बढ़ाता है और व्यक्ति को एकाग्रता में मदद करता है। मंत्रों का उच्चारण शरीर के विभिन्न तंत्रों पर सकारात्मक प्रभाव डालता है। यह शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को सुधारता है।

एक शांत और स्वच्छ स्थान पर ही इसका अभ्यास करना चाहिए। किसी भी आरामदायक मुद्रा में बैठे। पद्मासन, सिद्धासन या सुखासन में बैठना उपयुक्त होता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि मंत्र योग आत्मिक और आध्यात्मिक उन्नति के लिए एक महत्वपूर्ण साधन है जो साधक को अपने लक्ष्य की ओर बढने की प्रेरणा देता है।

ध्यानयोग : शांति और आत्मज्ञान की ओर एक यात्रा

ध्यान भीतर से जागृति की एक ऐसी क्रिया है जो मानसिक शांति प्रदान करने के साथ ही जीवन में प्रसन्नता, रचनात्मकता तथा दृढ़ संकल्प शक्ति का विकास करती है। ध्यान योग के निरंतर अभ्यास द्वारा आंतरिक ऊर्जा पर ध्यान देते हुए शरीर में स्थित षट्चक्रो को जागृत किया जाता है। मस्तिष्क को केन्द्रित करते हुए एकाग्रता को बढ़ाया जाता है। यह एक आध्यात्मिक अभ्यास है जिसमें ध्यान और मेधाशक्ति को विकसित किया जाता है। कई ऋषियों ने और स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में ध्यान योग का वर्णन किया हैं।

ध्यान, अष्टांग योग का सातवां महत्वपूर्ण अंग है। महर्षि पंतजलि ने योग दर्शन के विभूति पाद के पहले सूत्र में स्पष्ट किया है–''**देशबंध चित्तस्य धारणा''** किसी भी एक स्थान पर मन को बांध लेना धारणा है।

''तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्'' जहां पर धारणा की थी उसी पर एकरूपता बनी रहना ध्यान की अवस्था है। जब निरंतर धारणा का समय बढ़ाया जाता है तो वह अवस्था ध्यान तक पहुंचाने वाली होती है।

सांख्य दर्शन में महर्षि कपिल ने कहा है –

''**रागोपहर्तिध्यानम्**'' (सा.द. 3/30) अर्थात् राग का हट जाना ही ध्यान है। इस प्रकार कह सकते है कि जब चित्तको एकाग्र करके किसी भी एक वस्तु पर बहुत समय तक केंद्रित कर दिया जाता है तो वह ध्यान की प्रक्रिया होती है। यही अवस्था परम ब्रह्म के शांत, ज्योतिर्मय और आनंदमय स्वरूप में पूर्णतया लीन हो जाना है।

सांख्य दर्षन में कहा गया है **ध्यानं निर्विषयंमनः** (सा.द 6/25) जब मन विषयों से रहित हो जाता है, तब ध्यान की अवस्था होती है।

घेरंड संहिता में महर्षि घेरण्ड ने तीन प्रकार के ध्यान बताए गए हैं–

स्थूलं ज्योतिस्तथा सूक्ष्मं ध्यानस्य त्रिविधं विदुः –

1. **स्थूल ध्यान**
2. **ज्योर्तिध्यान**
3. **सूक्ष्म ध्यान**

स्थूल ध्यान एक प्रकार का मूर्तिमय ध्यान है जो किसी भी एक मूर्ति या स्थान पर केंद्रित होकर किया जाता है। इसे नासिका के अग्र भाग पर भी लगाया जा सकता है। साधक के सामने ईश्वर का कोई भी स्वरूप हो उसके ऊपर ध्यान लगाया जाता है।

ज्योर्तिध्यान के अंतर्गत अपनी कुंडलिनी जो सर्पाकार बताई गई है उसी को शक्तिशाली बनाया जाता हे और इस पर ध्यान केंद्रित किया जाता है।

सूक्ष्म ध्यान–सूक्ष्म ध्यान वह ध्यान है जो अपनी आत्मा पर अर्थात् स्वयं पर लगाया जाता है। श्वासों को अंतर्मुखी करके पूरा ध्यान उन्हीं पर लगा दिया जाता है, इसमे ब्रह्म का पूर्ण चिंतन किया जाता है और उसी में स्वयं को एकाकार कर लिया जाता है। यह उच्च कोटि का ध्यान है।

उपनिषदों और गोरक्ष संहिता में भी ध्यान के दो प्रकार बताए गए हैं – सगुण ध्यान, जिसे एक तरह से स्थूल ध्यान भी कह सकते हैं। यह किसी भी एक स्वरूप को ध्यान में रखकर लगाया जाता है। किसी भी स्थूल वस्तु पर यह ध्यान लगाया जाता है। किसी बिन्दु दीपक की लौ, सूर्य और चन्द्रमा आदि पर चित्त को लगाया जा सकता है।

निर्गुण ध्यान में पूरी तरह से आत्मा को पवित्र कर दिया जाता है अपने अंर्तमन पर यह ध्यान लगाया जाता है यह सूक्ष्म ध्यान है, जो

बिना किसी प्रतिमा के आत्म तत्व को संचालित करके किया जाता है।

श्रीमद्भागवत गीता में भी ध्यान के विषय में श्री कृष्ण ने विस्तार से बताया है और ध्यान का समय और स्थान दोनों निर्धारित करते हुए कहा है कि सर्वप्रथम किसी शांत स्थान पर जो ऊंचा–नीचा ना हो ऐसी जमीन पर मृगछाल या कोई भी आसन बिछाकर ही ध्यान करना चाहिए। श्री कृष्ण कहते हैं कि एकांत स्थान का चयन करते हुए आत्मा को निरंतर परमात्मा में लीन करते हुए और अनासक्त भाव से कर्म करते हुए नित्य ध्यान का अभ्यास करना चाहिए। जिस प्रकार कछुआ अपने सभी अंगों को समेट लेता है उसी प्रकार ध्यान के अभ्यास से योगी अपनी इन्द्रियों को अपने वष में करते हैं।

समं कायसिरोग्रीवं धारयन् मनसा गृहीत।

सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिषष्चानवलोकयन्।। (6/13)

श्रीकृष्ण कहते हैं कि योगाभ्यास करने वाले व्यक्ति को चाहिए कि वह अपने शरीर, तन और सिर को सीधा रखते हुए अपने नासिका के अग्र सिरे पर दृष्टि को लगायें और हृदय में मेरा चिन्तन करें।

ध्यान योग की कई विधियां है, जिनमें से कुछ प्रमुख है :

ओंकार ध्यान : शरीर, बुद्धि और मन को स्वस्थ रखने वाला ध्यान जो अष्टांग योगों का सार है वह है, ओमकार ध्यान। समस्त ब्रह्मांड ओमकार में है और एक दिव्य शक्ति के रूप में है, जो संपूर्ण ब्रह्मांड का संचालन कर रही है। श्वास प्रश्वास पर मन को एकाग्र करके प्राणों के साथ उद्गीत का जप ही ओमकार ध्यान है।

"ओम" शब्द सर्वशक्तिमान परमात्मा का प्रतीक है।
अ–अकार की उत्पत्ति कंठ मूल से कही गई है।
ऊ–ऊकार की उत्पत्ति होठों से हुई है और
म– मकार की उत्पत्ति बंद होठों से हुई, बताई गई है।

ध्यान की अवस्था में आने से पूर्व धारणा का अभ्यास किया जाता है और फिर धीरे–धीरे लंबे समय तक स्थिर होते हुए ध्यान की स्थिति

को प्राप्त किया जाता है जब योगी ध्यान में पूरी तरह तल्लीन हो जाते है तो उनके ज्ञान के केंद्र खुल जाते है, ज्ञान के मुख्य केंद्र है–

1. ज्ञान केंद्र (सिर का ऊपरी भाग जो ज्ञान का केंद्र है)
2. शांति केंद्र (सिर का अग्र भाग)
3. ज्योति केंद्र (ललाट का मध्य भाग)
4. दर्शन केंद्र (दोनों भृकुटी के मध्य का भाग)
5. चाक्षुष केंद्र (नेत्रों के अंदर का भाग)
6. अप्रमाद केंद्र (दोनों के भीतर, मध्य और बाहर का भाग)
7. प्राण केंद्र (नासिक का अग्रभाग)
8. जिव्हा केंद्र (जीभ का अग्रभाग)
9. विशुद्ध केंद्र (कंठ का मध्य भाग)
10. आनंद केंद्र (फेफड़ों के मध्य और हृदय के पास का भाग)
11. तेजस (नाभि के मध्य का भाग)
12. स्वास्थ्य (पेडू का भाग)
13. शांति (मूलाधार का भाग)

ध्यान योग मानसिक तनाव को कम करता है और शांति का अनुभव कराता है।

यह उच्च रक्तचाप, दिल की बीमारियों और अन्य शारीरिक समस्याओं को दूर करने में मदद करता है और मानसिक रूप से सुदृढ़ बनाता है।

ध्यान योग आत्मा की गहराई में जाने और अपने सच्चे स्वरूप को पहचानने में मदद करता है। ध्यान योग एक प्राचीन और शक्तिशाली साधना है जो हमें मानसिक, शारीरिक और आध्यात्मिक रूप से समृद्ध बनाती है। इसके नियमित अभ्यास से हम न केवल अपने जीवन की गुणवत्ता में सुधार कर सकते हैं, बल्कि आत्म–साक्षात्कार की दिशा में भी आगे बढ़ सकते हैं। ध्यान योग की यह यात्रा शांति, प्रेम और आत्म–ज्ञान की ओर एक सुंदर और सार्थक मार्ग है।

हठ योग - भारतीय योग परंपरा का एक महत्वपूर्ण अंग

हठ योग, योग की एक प्राचीन विधि है, जिसका महत्वपूर्ण उद्धेश्य शरीर और मन को संतुलित और शुद्ध करना है। हठ शब्द शरीर और मन पर नियंत्रण पाने के लिए अनुशासन और प्रतिबद्धता को दर्शाता है लेकिन इसका अर्थ बिल्कुल भी यह नहीं है कि अपने शरीर के साथ जोर जबरदस्ती की जाए। हठयोग एक ऐसी साधना पद्धति है जिसमें कुण्डलिनी को जागृत कर उसे सहस्त्रार चक्र तक ले जाया जाता है। इसके प्रवक्ता आदिनाथ शिव कहे गए है और इस योग की प्रथम श्रोता मां पार्वती थी। भगवान शिव ने यह ज्ञान सबसे पहले पार्वती से कहा था फिर अपने शिष्य मत्स्येंद्र नाथ से मत्स्येंद्र नाथ ने अपने शिष्य गुरू गोरखनाथ और फिर उन्होंने उनके शिष्य देवी नाथ से इस योग को कहा और इसी प्रकार यह ज्ञान आगे से आगे गुरू शिष्य परंपरा के साथ बढता रहा है। हठयोग साधक को उच्च कोटि की साधना प्रदान करता है। इसका प्रमुख उद्धेश्य राजयोग की प्राप्ति है जिसे सभी योगों में श्रेष्ठ कहा गया है। हठ योग के प्रमुख ग्रंथों में 'हठयोग प्रदीपिका, घेरंड संहिता, शिव संहिता और गौरक्षशतकम हैं।

हठ का अर्थ – हठ शब्द दो शब्दों के मेल से बना है, ह और ठ।

'ह' का अर्थ है, हकार अर्थात् सूर्य नाडी जिसे पिंगला भी कहा जाता है जो हमारा दायां स्वर है। इसे सूर्य का प्रतीक माना गया है यह सूर्य के समान उष्ण कठोर और रोशनी देने वाली है शरीर में गर्मी की अवस्था इसी के कारण होती है सूर्य ही हमें जीवन शक्ति देता है और हमें ऊर्जा और विकास की ओर लेकर जाता है। यह

रक्त संचरण का कार्य करता है। श्वसन तंत्र तथा हृदय को मजबूत बनाता है।

'ठ' का अर्थ है ठकार अर्थात् चन्द्र नाडी जिसे ईडा भी कहा जाता है जो हमारा बायां स्वर है। चन्द्रमा, रात्रि, शीतलता और सौम्यता का प्रतीक है। यह मन का कारक है और सूक्ष्म जीवन शक्ति है। जीवन रूपी कर्तव्य पथ के निर्वहन हेतु इसकी आवश्यकता हैं शरीर में उत्सर्जन का कार्य इसी के द्वारा किया जाता है। जब ईडा और पिंगला जागृत हो जाती है और उनका सुषुम्ना से एकीकरण हो जाता है, तब स्वर साधना सिद्ध होती है जिससे कुंडलिनी जागरण होता है तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसमें विवेक ज्ञान की सत्ता प्रबल होती है।

हठयोग का मुख्य ग्रंथ जो स्वंय भगवान शिव द्वारा लिखा गया है वह है शिव संहिता। इसके अंतर्गत पांच–पांच पटलों में योग की चर्चा की गई है इसमें चार प्रमुख आसन सिद्धासन, पद्मासन, उग्रासन और स्वास्तिकासन की चर्चा की गई है और कहा गया है कि यह चारों ही आसन शक्ति और सामर्थ्य को बढाने वाले हैं और भवसागर से पार करवाने वाले हैं। नाडी शोधन प्राणायाम को ही महत्व दिया गया है।

हठयोग प्रदीपिका में स्वामी स्वात्माराम जी ने योग के चार अंग बताएं है।

आसन – शारीरिक मुद्राएं जो शरीर को मजबूत और लचीला बनाती है। यहां 15 आसनों के विषय में चर्चा की गई है।

प्राणायाम – श्वास–प्रश्वास की ऐसी तकनीक जो प्राण ऊर्जा को नियंत्रित करती है। आठ प्रकार के प्राणायाम की चर्चा यहां की गई है।

मुद्रा – शरीर की अवस्थाएं जो ऊर्जा को संतुलित करती है। कुल दस मुद्राओं की चर्चा की गई है।

नादानुसंधान – इसमें साधक को अलग–अलग प्रकार के नाद सुनाई देते है।

घेरंड संहिता में महर्षि घेरंड ने हठयोग के सात अंगो पर प्रकाश डाला है : –

षटकर्म – धौति, वस्ती, नेति, लौलिकी/नौली, कपालभाति, त्राटक।

आसन – बत्तीस आसन बताए गए है। आसनों के विषय में महर्षि कहते हैं कि दुनिया में जितने जीव है उतने ही आसन होते हैं लेकिन उनमें श्रेष्ठ 32 आसन होते है जो सभी को करने चाहिए।

मुद्रा – कुल पच्चीस मुद्राओं की चर्चा की गई है।

प्रत्याहार – धैर्य और संयम की प्राप्ति के लिए प्रत्याहार का पालन आवश्यक बताया गया है।

प्राणायाम – आठ प्रकार के प्राणायाम का वर्णन है।

ध्यान – तीन प्रकार का ध्यान बताया गया है।

समाधि – छह प्रकार की समाधि को महत्व दिया गया है।

इस प्रकार हठयोग के ग्रंथों में हठ योग के अलग–अलग अंगों पर प्रकाश डाला गया है।

हठयोग आत्म–अन्वेषण और आत्म–शुद्धि की दिशा में मार्गदर्शन करता है, जिससे आत्म साक्षात्कार और आध्यात्मिक विकास होता है। हठयोग एक सम्पूर्ण योग प्रणाली है जो शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य को बढावा देती है। इसके नियमित अभ्यास से व्यक्ति न केवल शारीरिक रूप से स्वस्थ होता है बल्कि मानसिक शांति और आध्यात्मिक संतुलन भी प्राप्त करता है। आधुनिक जीवन की तनावपूर्ण परिस्थितियों में, हठयोग का अभ्यास संतुलित और स्वस्थ जीवन जीने का एक प्रभावी तरीका हो सकता है।

योग वशिष्ठ - जीवन की कठिनाईयों से मुक्ति का मार्ग

योग वशिष्ठ अद्वैत वेदांत का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इसके रचनाकार आदि कवि महर्षि वाल्मीकि हैं। इसे महारामायण और अर्श रामायण के नाम से भी जाना जाता है। इसमें श्रीराम और ऋषि वशिष्ठ के बीच संवाद है, जो वास्तविक स्वरूप, जीवन का उद्धेश्य और मुक्ति (मोक्ष) की प्राप्ति के मार्ग पर चर्चा करतो है। श्रीराम गुरूकुल से लौटकर आये फिर ऋषि भारद्वाज के आश्रम में गए और उसके पश्चात् तीर्थाटन को गए। तीर्थाटन से पुनः लौटने के पश्चात् उनके मन में वैराग्य का भाव आ गया। श्रीराम की स्थिति को महर्षि वशिष्ठ समझ गए और उन्होंने श्रीराम को उपदेश दिया और उनके साथ संवाद प्रारंभ किया इसी संवाद ने ''योग वशिष्ठ'' का रूप लिया।

योग को महत्व देते हुए यहां कहा गया है –

संसारोत्तरणे युक्तियोगीशब्देन कथ्यते अर्थात् संसार सागर से पार होने की युक्ति ही योग है। योग वशिष्ठ में चित्त् विलय के दो उपाय बताए गए है – आत्मज्ञान व प्राण निरोध।

योग वशिष्ठ में छः प्रकरण है :–

वैराग्य प्रकरण – इस प्रकरण में राम की वैराग्य पूर्ण स्थिति का वर्णन स्वयं राम द्वारा किया गया है।

मुमुक्ष प्रकरण –इस प्रकरण के अंतर्गत मुमुक्षु का व्यवहार कैसा होता है इसकी चर्चा की गई है। महर्षि सुखदेव जी कथा सुनाई और बताया कि किस प्रकार सुखदेव जी लगातार मोक्ष के लिए प्रयत्न

कर रहे थे। पुरूषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) तथा मोक्ष के चार द्वारपालों के विषय में भी इसी प्रकरण में चर्चा की गई है।

उत्पत्ति प्रकरण – इस प्रकरण में जगत की उत्पत्ति का क्या कारण है। जगत् की उत्पत्ति कैसे हुई ? पुनर्जन्म, मन का स्वरूप, संकल्प और विकल्प, मन का निग्रह, वासना, चित् की द्वैत और अद्वैत अवस्था आदि का वर्णन इसी प्रकरण के अंतर्गत किया गया है।

स्थिति प्रकरण – जगत के विषय में जानकारी दी गई है जगत क्या है ? जीव का जगत में रहने का कारण कया है ? इसका पालन पोषण कैसे होता है ? ज्ञान की अवस्था, वासनाएं, ज्ञानी और अज्ञानी में अंतर, राग, चित् की शुद्धि, संसार का प्रधान तत्व, ज्ञान की भूमियां आदि विषयों पर चर्चा इसी प्रकरण में की गई है।

उपासना प्रकरण – मिथ्या जगत, माया का पर्दा, जीवन मुक्ति, विदेह मुक्ति जैसे विषयों पर चर्चा की गई है। सृष्टि पुनः कैसे शांत अवस्था में जाती है। इसका पूर्ण वर्णन मिलता है।

निर्वाण प्रकरण – इस प्रकरण के अंतर्गत ब्रह्म की अवस्था, जगत का कारण ब्रह्म है, अष्टांग योग, सांख्य योग विभुतियां अर्थात् योग मार्ग पर चलने से जो सिद्धियां प्राप्ति होती है उनका वर्णन यही किया गया है। मोक्ष की अवस्था और योग मार्ग के विज्ञानों की चर्चा भी इसमें की गई है। निर्वाण प्रकरण में आधि और व्याधि के विषय में बताया गया है। आधि का अर्थ है मानसिक रोग। व्याधि का अर्थ है, शारीरिक रोग। स्वास्थ्य को प्राथमिकता देते हुए कहा गया है कि यदि शरीर स्वस्थ होगा तो हमारा मन भी प्रसन्न होगा और हम सभी कार्यों को पूर्ण एकाग्रता के साथ सही तरीके से कर पाएंगे। अधिज रोगों को दो प्रकार से बांटा गया है, सामान्य रोग और सार अधिज रोग। सामान्य रोग वे होते है जो समान्यतया सभी को हो जाते है इन्हें इस प्रकार समझा जा सकता है कि शरीर का कार्य होता है विजातीय द्रव्यों को बाहर निकालने का और उसी के तहत प्रकृति अपने आप ही कार्य करती है और जुकाम कफ, बुखार आदि के रूप में यह शरीर से मल को बाहर निकालते है। ये रोग पैतृक नहीं होते है। सार अधिज का अर्थ है, वे रोग जो पैतृक होते हैं अर्थात् यदि

परिवार में किसी व्यक्ति को कोई रोग है तो वह बच्चों को भी होने की संभावना रहती है। अवसाद, तनाव, डिप्रेशन, एंजायटी यह सभी रोग आधि अर्थात् मानसिक रोगों की श्रेणी में आते है।

व्याधि का अर्थ है शारीरिक रोग। इन्हें अनाधिज रोग भी कहा जाता है। बुखार, खांसी, जुकाम, डायबिटीज, गठिया इत्यादि रोग इसी श्रेणी में आते है।

आधि और व्याधि दोनों का ही मुख्य कारण भय, क्रोध, चिंता, राग, द्वेष, समय पर अन्न ग्रहण नहीं करना, प्रकृति के अनुसार जीवन ना जीना, रात्रि को भोजन करना आदि है।

आधि और व्याधि के निवारण हेतु औषधियों का प्रयोग करना चाहिए, ऐसा कहा गया है। योग, प्राणायाम, ध्यान का अभ्यास, शुद्ध सात्विक आहार का प्रयोग, प्रकृति के अनुसार आचरण करके मानसिक और शारीरिक रोगों को दूर किया जा सकता है।

आधि और व्याधि को इस सारणी के द्वारा समझा जा सकता है।

सांख्य दर्शन में योग का स्वरूप

छः प्रमुख भारतीय दर्शन है –पूर्व मीमांसा, उत्तर मीमांसा, सांख्य दर्शन, वैशेषिक दर्शन, न्याय दर्शन, योग दर्शन।

सांख्य दर्शन भारतीय दार्शनिक प्रणालियों में से एक है जो प्राचीन काल से ही महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह महर्षि कपिल द्वारा प्रतिपादित है। सांख्य दर्शन का प्रमुख उद्धेश्य आत्मा (पुरूष) और प्रकृति के संबंध को स्पष्ट करना है। यह दर्शन मुख्यतः द्वैतवादी है, जिसमें पुरूष और प्रकृति स्वतंत्र और अनादि तत्व माने जाते है। सांख्य दर्शन सबसे पुराने दर्शनों में से एक महत्वपूर्ण दर्शन है, ब्रह्म सूत्र के बाद इसी का स्थान आता है। वेदों की सत्ता में विश्वास रखने वाला यह एक आस्तिक दर्शन है।

सांख्य दर्शन में विकासवाद के सिद्धांत को बताते हुए प्रकृति व पुरूष सहित कुल 25 तत्वों के विकास की प्रक्रिया का वर्णन किया गया है, संख्या के कारण ही इसका नाम सांख्य शास्त्र पड़ा। कहा भी गया है। **'संख्यया कृतिमिति सांख्यम्'** – अर्थात् गिनाने वाला शास्त्र। इसमें संख्या के विश्लेषण को भी बताया गया है–सं**+**ख्या **=** सं का अर्थ है सम्यक् तथा ख्या का अर्थ है, ज्ञान अर्थात् सम्यक् ज्ञान कराने वाला शास्त्र ही सांख्य शास्त्र है।

प्रकृति पांच तत्वों से मिलकर बनी है इसी प्रकृति (शरीर) और पुरूष (आत्मा) से अन्य तत्वों की उत्पत्ति की धारणा इसमें बताई गई है, श्रीमद्भगवतगीता में श्री कृष्ण ने भी कहा है कि

प्रकृतिं पुरूषं चैव विद्धयनादि उभावपि।
विकारांश्च गुणान्श्चैवविद्धि प्रकृतिसम्भवन्।।13/20।।

कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते।
पुरुषः सुखदुःखानां भौक्तृत्वे हेतुरुच्यते॥20॥

प्रकृति और पुरूष दोनों अनादि है, समस्त विकास और गुण प्रकृति से उत्पन्न हैं। कार्यकारणकर्तव्य (परिणाम) का हेतु प्रकृति तथा सुख–दुख भोक्तृत्व का हेतु पुरूष है।

प्रकृति और पुरूष दोनों को ही श्रीकृष्ण ने अनादि कहा है और राग, द्वेष आदि विकारों को तथा त्रिगुणात्मक सम्पूर्ण पदार्थों को भी प्रकृति से ही उत्पन्न बताया है कार्य और करण को उत्पन्न करने हेतु प्रकृति ही कही गई है और जीवात्मा सुखों और दुखों के भोक्ता रूप में है। संख्यिकारिका में भी कहा गया है–

प्रकृति से महत् और उससे अहंकार और फिर मन, पंचतन्मात्राएं, पंचतत्व और दस इंद्रियां उत्पन्न हुए है। सांख्य दर्शन में चार सिद्धांत बनाए गए हैं– सत्कार्यवाद या कार्य–करण का सिद्धांत, दुख का सिद्धांत, प्रमाण का सिद्धांत व विकास का सिद्धांत।

1. **कार्य–करण के सिद्धांत** में कहा गया है कि कार्य पहले से ही विद्यमान होता है तभी वह बाद में बाहर निकल कर आता है। जेसे तिलों में तेल पहले से ही विद्यमान होता है इसी कारण में बाहर निकल कर आता है। मक्खन में घी पहले से ही विद्यमान होता है, इसी कारण बाद में वह घी के रूप में आता है।
2. **दुख के सिद्धांत** पर सांख्य ने तीन प्रकार के दुख बताएं है– आध्यात्मिक दुख, जो शरीर के विकारों के रूप में उभरते हैं जिसमें किसी भी प्रकार की बीमारी, बुखार, खांसी, डायबिटीज आदि रोगों से हमारा शरीर जकड़ जाता है। अधिभौतिक दुख : इन दुखों के विषय में सांख्य कहता है कि भौतिक सुख सुविधाओं के कारण जो दुख उत्पन्न होते है वे अधिभौतिक दुख होते हैं। जैसे सड़क पर किसी दुर्घटना का हो जाना। दैवीय दुखः – दैवीय प्रकोपों के कारण या आपदाओं के कारण जो दुख देखने पड़ते है वे दैवीय दुख होते हैं जैसे– भूकंप, अकाल आदि।

3. **प्रमाण का सिद्धांत** देते हुए सांख्य दर्शन कहता है कि प्रमाण तीन प्रकार के होते हैं। **प्रत्यक्ष प्रमाणः** जो भी कुछ सामने घटित हो रहा है, वह प्रत्यक्ष है।

   अनुमान प्रमाण : जिसमें अनुमान लगाया जाता है। जैसे–धूम्र में अग्नि का अनुमान। अर्थात् दूर कहीं धुआं दिखाई देने पर हम यह अनुमान लगा लेते हैं कि वहां आग ही लगी होगी जबकि धुएं का कुछ और कारण भी हो सकता है।

   शब्द प्रमाण : शास्त्रों में और गुरू अथवा अपने से बड़ों के द्वारा और पूर्वजों के द्वारा कहे गए वचन जो की प्रमाणित होते है, उन वचनों का पालन करना ही शब्द प्रमाण है।

4. **विकासवाद के सिद्धांत** को समझाते हुए सांख्य में 25 तत्वों की उत्पत्ति के विषय में बताया गया है।

सांख्य दर्शन के 25 तत्वों को इस चार्ट के द्वारा आसानी से समझा जा सकता है –

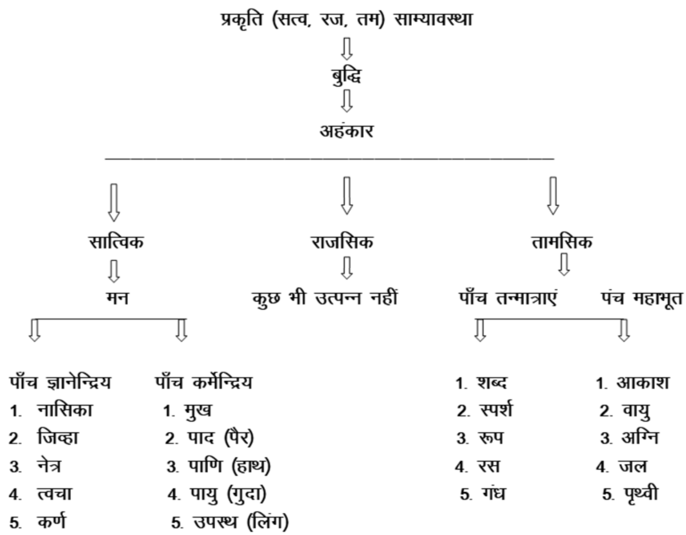

पुरूष और प्रकृति से अन्य तत्वों की उत्पत्ति बताई गई है। प्रकृति सत्व, रज और तम से बनी है इसी से बुद्धि की उत्पत्ति हुई है।

बुद्धि से अहंकार बने। अहंकार तीन प्रकार के हैं– सात्विक अहंकार, राजसिक अहंकार और तामसिक अहंकार। सात्विक अहंकार से मन की उत्पत्ति हुई है और मन से ज्ञानेंद्रियों और कर्मेंद्रियों की उत्पत्ति हुई फिर तामसिक अहंकार से पंचमहाभूत और पंच तन्मात्राओं की उत्पत्ति हुई। राजसिक अहंकार से कुछ भी उत्पन्न नहीं होता है। इन्हीं 25 तत्वों का ज्ञान सांख्य करवाता है।

सांख्य में योग का स्वरूप –

सांख्य दर्शन में योग का महत्वपूर्ण स्थान है। यहाँ योग को आत्मा और प्रकृति के पारस्परिक संबंध और भिन्नता को समझने और अनुभव करने की विधि के रूप में देखा जाता है। योग के माध्यम से व्यक्ति अपनी आत्मा की वास्तविकता को पहचान सकता है और प्रकृति से स्वतंत्र हो सकता है।

1. **पुरूष और प्रकृति की पहचान** –सांख्य दर्शन में योग का मुख्य उद्धेश्य पुरूष और प्रकृति की सही पहचान करना है। पुरूष शुद्ध चेतना है जो निष्क्रिय, साक्षी और अपरिवर्तनीय है। वहीं, प्रकृति सक्रिय, परिवर्तनशील और त्रिगुणात्मिका (सत्व, रज, तम) है। योग के माध्यम से व्यक्ति यह समझ सकता है कि वह पुरूष है, और प्रकृति से उसकी अलग पहचान है।
2. **कैवल्य की प्राप्ति** – सांख्य दर्शन में योग के माध्यम से अंतिम लक्ष्य कैवल्य (मोक्ष) की प्राप्ति है। कैवल्य का अर्थ है आत्मा का प्रकृति से पूर्णतः मुक्त हो जाना। योगाभ्यास द्वारा व्यक्ति अपनी आत्मा को प्रकृति के बंधनों से मुक्त कर सकता है, जिससे जन्म–मरण के चक्र से मुक्ति मिलती है।
3. **ध्यान और आत्मनिरीक्षण** – सांख्य दर्शन में योग के माध्यम से ध्यान और आत्मनिरीक्षण पर बल दिया जाता है। ध्यान के द्वारा मन की चंचलता को नियंत्रित कर आत्मा की शुद्ध चेतना का अनुभव किया जा सकता है। आत्मनिरीक्षण के द्वारा व्यक्ति अपनी आंतरिक शक्तियों और आत्मा के स्वरूप को समझता है।

4. **त्रिगुणों का संतुलन** – सांख्य दर्शन में योग का एक महत्वपूर्ण पहलू त्रिगुणों (सत्व, रज, तम) का संतुलन है। योगाभ्यास द्वारा व्यक्ति अपने भीतर के त्रिगुणों को संतुलित कर सत्व गुण को प्रमुख बना सकता है, जो आत्मज्ञान और मोक्ष की ओर ले जाता है।

सांख्य दर्शन में योग का स्वरूप आत्मा और प्रकृति की पहचान, ध्यान और आत्मनिरीक्षण, अष्टांग योग, और त्रिगुणों के संतुलन के माध्यम से व्यक्त किया गया है। योगाभ्यास के द्वारा व्यक्ति अपनी आत्मा की शुद्ध चेतना का अनुभव कर प्रकृति के बंधनों से मुक्त होसकता है और कैवल्य की प्राप्ति कर सकता है। इस प्रकार, सांख्य दर्शन में योग व्यक्ति को आत्मज्ञान और मोक्ष की ओर अग्रसर करता है।

बौद्ध दर्शन (आत्मदीपो भव)

बौद्ध दर्शन का महा वाक्य है – **"आत्मदीपो भव"** अर्थात् स्वयं अपने दीपक बनो।

बौद्ध दर्शन के प्रणेता गौतम बुद्ध हैं। इनका जन्म लुंबिनी नामक स्थान पर 563 ईस्वी पूर्व हुआ। इनके बचपन का नाम सिद्धार्थ था। सिद्धार्थ एक राजकुमार थे। उनकी पत्नी का नाम यशोधरा और बेटे का नाम राहुल था। एक दिन एक रोगी, वृद्ध और मृतक को देखकर उनके मन में संन्यास के भाव जागे और यह अपना राज पाट सब कुछ छोडकर तपस्वी बन गए। कठिन तपस्या के पश्चात् इनको ज्ञान हुआ और ये बुद्ध नाम से प्रसिद्ध हुए। बौद्ध दर्शन एक नास्तिक दर्शन है। इसके अंतर्गत दो धार्मिक संप्रदाय आते हैं हीनयान और महायान।

हीनयान मूल संप्रदाय है जो भगवान बुद्ध के द्वारा बनाया गया है इसकी लिपि पाली है और इसमें व्यक्तित्ववाद और निर्वाण पर बल दिया गया। इसमें क्षणिकवाद, अनात्मवाद और अनिश्वरवाद की प्रमुखता है।। यहां पर बुद्ध को मनुष्य के रूप में माना गया है, एक ऐसा महान मनुष्य जिसने ज्ञान और निर्वाण का रास्ता दिखाया। श्रीलंका और बर्मा में हीनयान संप्रदाय को ही माना जाता है।

महायान संप्रदाय ने हीनयान से अलग होकर अपना एक अलग मार्ग बनाया है इसमें व्यक्तिवाद से हटकर कहा गया हे कि सभी को मोक्ष मिलना चाहिए भगवान बुद्ध को ईश्वर के रूप में स्वीकार किया गया है और निर्वाण को भाव रूप में मोक्ष से जोडा गया है। यह ईश्वर, आत्मा और बुद्ध की दी हुई सभी शिक्षाओं का भी पालन करते है। वर्तमान में चीन, जापान, कोरिया में इसी संप्रदाय को माना जाता है।

इसके अंतर्गत चार आर्य सत्यों को भी स्थान दिया गया है, 1. दुखः 2. दुखः का समुदाय 3. दुखः निरोध 4. दुखः निरोध के मार्ग। पहला

है, दुखः और उसका मूल कारण। दुख का कारण अविद्या है, नित्य और अनित्य के विषय में पूर्ण जानकारी ना होना क्षणिकवाद को ना मानना ही अविद्या है। दूसरा आर्य सत्य है, दुख का समुदाय। दुख का जो परिवार या समुदाय है। वह रोग, बुढापा, जन्म और मृत्यु को बताया गया है। तीसरा दुख निरोध का उपाय बताया गया है जो है यथार्थ ज्ञान, सत्य को जान लेना। चौथे नंबर पर दुख निरोध के मार्ग बताए गए है और वे प्रमुख मार्ग अष्टांगिक मार्ग है जिनके अनुसार चलकर निर्वाण को प्राप्त किया जा सकता है।

बौद्ध दर्शन के प्रमुख चार सिद्धांत है :–

ईश्वर को ना मानना।

आत्मा को अनित्य मानना।

मात्र ग्रंथ को प्रमाण के रूप में स्वीकार नहीं करना।

पुनर्जन्म की अवधारणा को मानना। ऐसा कहा गया है की जन्म मरण के बंधन से मुक्ति ही निर्वाण है और इसी के द्वारा पुनर्जन्म से छुटकारा मिल सकता है।

दार्शनिक विचारों के अंतर्गत तीन महत्वपूर्ण विचारों को स्थान दिया गया है –

1. **क्षणिकवाद** – इसके अंतर्गत स्कंध, आयतन और धातु को स्थान दिया गया है। स्कंध में रूप, वेदना, संस्कार और विज्ञान का समावेश है। आयतन में 6 इंद्रियां और 6 उनके रूपों को स्वीकार किया गया है। धातु 18 प्रकार की बताई गई है।
2. **प्रत्यीत समुत्पाद** – इसके अनुसार एक वस्तु की उत्पत्ति का कारण दूसरी वस्तु का होना है। जैसे चंद्रमा के आने पर ही शीतलता प्राप्त होती है या सूर्य के आने से ही प्रकाश मिलता है।
3. **अनात्मवाद –** बौद्ध दर्शन में आत्मा के स्वरूप को नहीं माना गया है।

बौद्ध धर्म में निर्वाण हेतु अष्टांगिक मार्गों को बताया गया है, यहां सम्यक् शब्द का अर्थ है – सही (उपयुक्त)। दुखः निरोध के मार्ग के रूप में इनके पालन की सलाह दी गई है।

1. सम्यक् दृष्टि – सम्यक् दृष्टि का अर्थ है यर्थात् ज्ञान होना अर्थात् सही और गलत में से सही को समझने की दृष्टि का होना, जीवन के सुख और दुख का सही अवलोकन कर पाना, सत्य और वास्तविकताओं को जान लेना ही सम्यक् दृष्टि है।
2. सम्यक् संकल्प – पूर्ण विश्वास के साथ दृढ निश्चयी बने रहना। राग द्वेष क्रोध, लोभ, मोह जैसे विकारों का त्याग करने का संकल्प लेना।
3. सम्यक् वाक् – कठोर और अप्रिय वचन ना कहना, वाणी की पवित्रता रखना और सदा सत्य कहना अर्थात् जैसा देखा वैसा ही कहना।
4. सम्यक् कर्मात् – अपने आचरण को पूर्णतया शुद्ध रखना, अच्छे कर्मों की ओर प्रवृत्त होना, बुरे कर्मों का परित्याग करना, क्रोध द्वेष आदि का त्याग करना।
5. सम्यक् आजीव – न्यायपूर्वक अपनी जीविका के साधन जुटाना अर्थात् किसी को हानि पहुंचाये बिना धर्म के अनुसार अपनी आजीविका के साधनों को अपनाना।
6. सम्यक् व्यायाम – अपने मन को नियंत्रित करने के उपाय का अभ्यास करना ध्यान और व्यायाम को अपने जीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा बनाना। अच्छे कर्म करने के लिए सदा प्रयत्नशील रहना।
7. सम्यक् स्मृति –एकाग्रतापूर्वक अपने विचारों और भावनाओं को शुद्ध और स्थिर करना तथा किए गए अच्छे कर्मों का चिंतन करना।
8. सम्यक् समाधि – पूर्णतया एकाग्र हो जाना और ईश्वर को प्राप्त कर लेना।

इन अष्टांगिक मार्गों को निर्वाण का सेतु बताया गया है। बौद्ध साधना के तीन प्रमुख आधार बनाए गएं है जो इस प्रकार हैं –

शील –शील का अर्थ है अज्ञान और अविद्या से मुक्ति प्राप्त कर लेना और ज्ञान का प्रादुर्भाव हो जाना।

समाधि – चित् की चंचलता को समाप्त कर उसे पूर्णतः एकाग्र कर लेना ही समाधि की अवस्था है।

प्रज्ञा – प्रज्ञा निर्वाण की अवस्था है। समाधि के पश्चात् जो परम ज्ञान प्राप्त होता है जिससे परमात्मा की प्राप्ति होती है, वही प्रज्ञा है।

जिस प्रकार से महर्षि पंतजलि ने यम, नियम को बताया है उसी प्रकार बौद्ध दर्शन में भी प्रमुख 10 नियम बताए गए है जिनका पालन करना आवश्यक कहा गया है।

1. अहिंसा
2. अपरिग्रह
3. ब्रह्मचर्य
4. सत्य
5. धर्म में श्रद्धा
6. दोपहर पश्चात् भोजन का निषेध
7. सुखप्रद आसन या शैया का त्याग
8. विलास की वस्तुओं से विरक्ति
9. सुगंधित पदार्थ का निषेध
10. स्वर्णादि मूल्यवान वस्तुओं का त्याग

इस प्रकार हम कह सकते है कि बौद्ध दर्शन आंतरिक शुद्धता, ध्यान और आत्म साक्षात्कार की एक प्रक्रिया है जिससे शरीर, मन और चेतना को समायोजित किया जाता है तथा प्रज्ञा को प्राप्त किया जाता है।

जैन दर्शन में योग

जैन दर्शन का महा वाक्य है – **''अहिंसा परमो धर्मः** अर्थात् अहिंसा ही हमारा परम धर्म है।

जैन दर्शन एक नास्तिक दर्शन है। यह वेदों की सत्ता को स्वीकार नहीं करते हैं। इस दर्शन में योग शब्द को समाधि के रूप में स्वीकार किया गया है। यशो विजय ने अपने ग्रंथ द्वात्रिंशिका में कहा है–

यतः समितिगुप्तीनां प्रपंचो योग उत्तमः

अर्थात् मन, वचन, शरीरादि को संयत करने वाला धर्म व्यापार ही योग है।

जैन दर्शन के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव थे तथा 24वें तीर्थकर महावीर स्वामी थे, महावीर स्वामी ने ही जैन धर्म का प्रचार–प्रसार बडे स्तर पर किया। महावीर स्वामी राजा वर्धमान के पुत्र थे और कुंडलपुर राजवशं के थे। जैन धर्म में दो संप्रदाय हैं श्वेतांबर जो श्वेत वस्त्र धारण करते हैं और दिगंबर जो कोई वस्त्र धारण नहीं करते हैं।

जैन दर्शन में त्रिरत्न का विवेचन किया गया है, जिन्हें मोक्ष के तीन भेद भी कहा गया है।

सम्यक् दर्शन – सत्य के प्रति श्रद्धा रखना अर्थात् यथार्थ को देखना और अविद्या का त्याग करना, सम्यक् दर्शन है।

सम्यक् ज्ञान – यह वास्तविक विवेक होता है अर्थात् जो वस्तु जैसी है उसे उसी रूप में जानना। जो दोष रहित होता है, संशय रहित होता है, वही ज्ञान है। नित्य और अनित्य सत्य और असत्य के मध्य भेद करने वाला ज्ञान होता है।

सम्यक् चरित्र – पवित्र व दोष रहित आचरण ही सम्यक् चरित्र है। मन, वाणी और कर्म से किसी को भी पीडा पहुंचाने का भाव ना हो। सम्यक् चरित्र हेतु दो मार्ग बताए गए है। श्रावकाचार जो गृहस्थ हेतु कहा गया है और श्रवणाचार्य जो मुनियों हेतु मार्ग बताया गया है। सम्यक् चरित्र के लिए तीन गुप्ती, दस धर्म और पांच महाव्रतों का पालन आवश्यक बताया गया है। गुप्ती संयम की अवस्था को कहा गया है।

काय गुप्ती – जो शरीर का संयम है। शरीर को अपने वश में करना ब्रह्मचर्य का पालन करना ही काय गुप्ती है।

वाक् गुप्ति – यह वाणी का संयम है अपनी वाणी से किसी को भी अपशब्द ना कहना कठोर वचन ना बोलना वाक् गुप्ति है।

मनो गुप्ति – मन को संयम में रखना और भौतिक वस्तुओं की ओर आकर्षित न होना मनो गुप्ति है।

पंच महाव्रत के विषय में जैन धर्म में बताया गया है और इनका पालन करना जैन अनुयायियों के लिए आवश्यक है। यह पांचो ही महाव्रत एक प्रकार से यम का ही स्वरूप है।

1. **अहिंसा** – मन वचन और कर्मों से किसी को भी हानि नहीं पहुंचाना अहिंसा की श्रेणी में आता है।
2. **सत्य** – जैसा देखा और सुना वैसा ही कहना यर्थात् ज्ञान।
3. **अस्तेय** – मन, वचन और कर्म से चोरी नहीं करना।
4. **ब्रह्मचर्य**– इंद्रियों को वश में रखना। रूप, रस, गंध आदि द्रव्यों का त्याग करना।
5. **अपरिग्रह** – भौतिक द्रव्यों में अनासक्ति। फालतू की वस्तुओं का संग्रह नहीं करना। मन में भी लोभ, क्रोध, मोह जैसे विकारों को स्थान नहीं देना।

जैन दर्शन में 10 प्रकार के धर्म की पालना कही गई है :–

क्षमा – क्षमा करने और मांगने का भाव रखना। इस हेतु ही क्षमा वाणी पर्व मनाया जाता है।

मारदव (मृदुला)– विनयशील होना।

आर्जव (सरलता) – सरल स्वभाव जिसमें कपट ना हो।

शौच – मन और शरीर की शुद्धि।

सत्य – जैसा देखा वैसा कहना।

संयम – अपने मन और इंद्रियों को वश में रखना।

तप– हर परिस्थिति को सहन करना।

त्याग – हिंसा, राम, द्वेष, अहंकार, लोभ आदि विकारों के त्याग की बात कही गई है।

अकिंचन्य – भौतिक पदार्थों में मोह का त्याग करना। चांदी, सोना, घर, जमीन इत्यादि भौतिक पदार्थों से अपने मन को दूर रखना।

ब्रह्मचर्य – अपने मन और इंद्रियों पर संयम रखना। सादगी से जीवन जीना, मोह और वासना से दूर रहना।

इस प्रकार जैन दर्शन में योग का विशेष महत्व है और इसे आत्मा की मुक्त अवस्था प्राप्त करने का साधन माना गया है। इसे व्यापक रूप से आत्मा की चेतना और कर्मों के संयोग के रूप में समझा जाता है।

योग में मुद्राओं की उपयोगिता

मुद्रा शब्द मुद् धातु से बना है जिसका अर्थ होता है खुशी या प्रसन्नता। शरीर की वह क्रिया जिससे शरीर के किसी विशेष अवयव को विशेष स्थिति में रखा जाता है। योग में कुछ शारीरिक और मानसिक क्रियांए करने से जो खुशी की प्राप्ति होती है वही मुद्रा है। मुद्राएं एक महत्वपूर्ण अवधारणा है, जो शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक कल्याण के लिए उपयोग की जाती है। संस्कृत में मुद्रा का अर्थ है, हाथों का संकेत लेकिन इनका प्रयोग पूरे शरीर की मुद्रा या आसनों के संदर्भ में भी किया जाता है।

हमारे शरीर में 72 हजार नाड़ियां हैं और उनकी शुद्धि के लिए जो क्रिया की जाती है, वही मुद्रा है। मुद्राएं इड़ा और पिंगला नाड़ियों का संतुलन बनाए रखती हैं और सुषुम्ना की जागृति में सहायक होती हैं। योग मुद्राएं ऊर्जा प्रवाह को नियंत्रित करने, चक्रों को संतुलित करने और चेतना की उन्नति में सहायक होती हैं।

योग मुद्राएं हमें योग की शक्ति से मिलने वाली प्रसन्न्ता देती हैं। मुद्राओं को तंत्र योग में विशेष महत्व दिया गया है वहां इनकी विशेष साधना की बात कही गई है। हठयोग में भी इन्हें शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य हेतु महत्वपूर्ण बताया गया है। ब्रह्म रंध्र के द्वारा जो अमृत रस टपकता है, इसका पान किस प्रकार से किया जाए यह मुद्राओं के द्वारा ही जाना जाता है। मुद्राओं में आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान और समाधि भी सम्मिलित है, इसी कारण इनके द्वारा मन और शरीर में स्थिरता आती है।

प्राचीन काल में मुद्राओं को तीन भागों में बांटा गया है –

मनोजा मुद्रा – मनोजा मुद्रा वे मुद्राएं है जिनका उद्भव मानसिक अनुसंधान से हुआ है अर्थात् यह मन और मानसिक शांति के लिए विशेष कार्य करती है।

वाग्भवा मुद्रा – वाग्भवा मुद्राओं की उत्पत्ति मंत्रों के द्वारा हुई है।

देहोभवा मुद्रा – हस्त मुद्राएं और शारीरिक रूप से की जाने वाली जो मुद्राएं है वह इसी के अंतर्गत आती हैं अर्थात् इनका उद्भव देह के द्वारा ही हुआ है।

यौगिक मुद्राएं – ये वे मुद्राएं हैं जिनका वर्णन योग से संबंधित ग्रथों में मिलता है। घेरंड संहिता हठ प्रदीपिका शिव संहिता जैसे ग्रंथों में इनका पूर्ण वर्णन पाया जाता है। हठ प्रदीपिका में 10 मुद्राओं और घेरंड संहिता में 25 मुद्राओं का वर्णन है दूसरे प्रकार की जो मुद्रा है वह हस्त मुद्राएं है। घेरंड संहिता में वर्णित 25 मुद्राएँ इस प्रकार है – महामुद्रा, नभोमुद्रा, उड्डीयान, जालन्धर, मूलबन्ध, महाबन्ध, महावेध, खेचरी, विपरीतकरणी, योनी, वज्रोली, शक्तिचालिनी, तड़ागी, माण्डूकी, शाम्भवी, पंचधारणा (पार्थिवी धारणा, आम्भसी धारणा, आग्नेयी धारणा, वायवीय धारणा, आकाशी धारणा), अश्विनी, काकी, मातंगी और भुजंगिनी यह पच्चीस (25) मुद्राएँ योगियों को सिद्धियां प्रदान करवाने वाली होती है।

हठप्रदीपिका के तीसरे अध्याय में योग के तीसरे अंग अर्थात् मुद्राओं का वर्णन करते हुए, कुल दस मुद्राओं की चर्चा की गई है। जिनमें खेचरी मुद्रा को सबसे श्रेष्ठ मुद्रा माना गया है। कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करने के लिए मुद्राओं के अभ्यास को बहुत उपयोगी माना है। हठ प्रदीपिका में वर्णित दस मुद्राएं इस प्रकार हैं – महामुद्रा, महाबंध, महावेध, खेचरी, उड्डीयान बंध, मूलबंध, जालंधर बंध, विपरीतकरणी, वज्रोली, शक्तिचालिनी।

1. **महामुद्रा** – बाएं पैर की एड़ी को गुदा और मूत्रेंद्रिय के बीच में सिवनी पर अच्छी तरह से दबा कर रखें और दाएं पैर को पूरा फैलाकर उसके अंगूठे को जोर से दोनों हाथों से पकडें। गहरी श्वास अंदर भरेंगे और जालंधर बंद और मूलबंध लगाकर रखेंगे। पैर के पंजे को दृढता से पकडे हुए रहेंगे। यथाशक्ति कुंभक कर धीरे–धीरे रेचक करेंगे। यही क्रिया दूसरे पैर से भी करेंगे। इस मुद्रा को सबसे बलशाली माना गया है। इसके अभ्यास से समस्त क्लेशों का नाश होता है जन्म मरण का नाश

होता है कुंडलिनी जागृत होती है। बुढ़ापे का नाश होता है अर्थात् शरीर में पूरी ऊर्जा बनी रहती है। कुष्ठ रोग, त्वचा से संबंधित रोग, कब्ज और गैस से संबंधित रोगों को दूर करने वाला होता है।

2. **महाबंध** – महाबंध के विषय में कहा गया है कि जब जालंधर बंध, उड्डीयान बंध और मूलबंध का अभ्यास एक साथ किया जाता है तब महाबंध की स्थिति होती है।

जालधंर बंध के विषय में हठप्रदीपिका में कहा गया है

कंठमाकुंच्य हृदये स्थापयेच्चिबुकं दृढ़म।

बंधो जालंधराख्योऽयं जरामृत्युविनाशकः।

अर्थात् कंठ का संकोच करके हृदय पर ठोडी को दृढ़ता के साथ लगायें यह जरा और मृत्यु का नाश करने वाला जालंधर बंध है। इससे गले के सभी रोगों का नाश होता है। थायराइड और पैराथायराइड ग्रंथिया क्रियाशील होती है और विशुद्धि चक्र जागृत होता है।

उड्डीयान बंध के विषय में कहा गया है

बद्धोयेन सुषुम्नायां प्राणस्तूड्डीयते यतः।

तस्मादुड्डीयनाख्योऽयं योगिभिः समुदाहृतः।।

उड्डीनं कुरूते यस्मादविश्रान्तं महाखगः।

उड्डीयानं तदेव स्यात्तत्र बंधोऽभिधीयते।।

अर्थात् जिससे बंधा हुआ प्राण उर्ध्वमुख होकर सुषुम्ना में पहुंच जाता है वहीं उड्डीयान बंध कहलाता है। इसके अभ्यास से पाचन क्रिया सुचारू होती है इससे कृमि रोग का नाश होता है, यकृत गुर्दे और आमाशय से संबंधित रोग दूर होते हैं और मणिपुर चक्र जागृत होता है।

मूलबंध के विषय में कहा गया है कि

पार्ष्णिभागेन संपीड्य योनिमाकुंचयेद्गुदम्।

अपानमूर्ध्वमाकृष्य मूलबन्धोऽभिधीयते।।3/60।।

अधोगतिमपांन वा ऊर्ध्वगं कुरूते बलात्।

आंकुचनेन तं प्राहुर्मूलबन्धं हि योगिनः।।3/61।।

अर्थात् एडी से पायु और उपस्थ के मध्य भाग को दबाकर गुदा का आंकुचन कर अपान वायु को ऊपर की ओर बढाया जाता है इसे ही मूलबंध कहते हैं। इसके अभ्यास से कब्ज और अपच दूर होता है, मल द्वार से सभी रोग जैसे बवासीर आदि दूर होते हैं व मूलाधार चक्र जागृत होता हैं।

3. **महावेध** – महावेध के विषय में स्वामी स्वात्माराम जी कहते है कि जब महामुद्रा और महाबंध का अभ्यास किया गया और यदि महावेध का अभ्यास नहीं किया गया तो महामुद्रा और महाबंध के द्वारा होने वाली सिद्धियों की भी प्राप्ति नहीं होती है। महावेध का अभ्यास कराने के लिए सर्वप्रथम आसन पर बैठ जाएं दोनों पैर सीधे रहेंगे दोनों हाथों की हथेलियां नितंबों के पास नीचे जमीन पर टिकी हुई रहेगी। धीरे–धीरे नितंबो का ऊपर उठाएं और जोर से नीचे पटकेंगे फिर ऊपर उठाएंगे और नीचे जोर के साथ पटकेंगे। यह क्रिया करते समय जालंधर बंद लगा हुआ रहेगा। इसके इसी प्रकार अभ्यास करने से प्राण ईडा और पिंगला को छोड़कर सुषुम्ना में प्रवाहित होने लगता है। कुंडलिनी जागृत होने लगती है। इसके अभ्यास से चेहरे की झुर्रियां समाप्त होती है बालों की सफेदी और बालों का झडना बंद होता है। जठराब्नि प्रदीप्त होती है। अष्ट सिद्धियां प्राप्त होती है।

4. **खेचरी मुद्रा** – खेचरी में ख शब्द का अर्थ है आकाश और चर का अर्थ है भ्रमण अर्थात् सूक्ष्य व स्थूल शरीर के मध्य मन की चेतना का भ्रमण कराने वाली ही खेचरी मुद्रा है। सभी मुद्रओं में श्रेष्ठ खेचरी मुद्रा को कहा गया है। जिह्वा को मोड करके कपाल गूहर में प्रवेश करवाना ही खेचरी मुद्रा है। सर्वप्रथम सुखासन में बैठ जाएं अपनी जीभ को ऊपर की ओर उल्टा ले जाकर तालु गुहर (जीभ के ऊपर तालु के बीच के हिस्से) में लगाएं यही खेचरी मुद्रा है। लेकिन इसके लिए जिव्हा को बढाना बहुत आवश्यक होता है इसमें छेदन, चालन और दोहन तीन क्रियाएं की जाती है। लगातार अभ्यास करने से जीभ इतनी लंबी हो जाती है कि वह नासिक के ऊपर तक पहुंच

जाती है और जब इस मुद्रा का अभ्यास किया जाता है तो जिव्हा के ब्रह्म रंध्र तक पहुंचने पर वहां से टपकने वाले रस का पान इसके द्वारा किया जाता है जो शरीर के सभी रोगों को दूर करने वाला होता है। इसके अभ्यास से मूर्छा नहीं आती और प्यास नहीं सताती। आलस्य दूर होता है। रोग और बुढापा दूर रहता है, यहां तक भी कहा गया है कि शरीर देवताओं के समान हो जाता है। गले से संबंधित परेशानियां दूर होती है। खेचरी मुद्रा का अभ्यास करने पर किसी प्रकार का जहर का प्रभाव मनुष्य पर नहीं पडता है और अकाल मृत्यु उसकी नहीं होती है, ऐसा कहा गया है।

5. **विपरीतकरणी मुद्रा** – इसे बलवर्धक मुद्रा के रूप में भी जाना जाता है। शरीर के विपरित स्थिति होने के कारण से विपरीतकरणी मुद्रा कहा जाता है। सर्वप्रथम बिल्कुल सीधे लेटते हुए गहरी श्वास लेंगे और अपने दोनों पैरों को ऊपर की तरफ उठाएंगे दोनों हाथों को कमर को सहारा देते हुए ऊपर उठा लेंगे जैसा कि सर्वांगासन में किया जाता है। दोनों हाथों को नितंबों के नीचे लगाएंगे और कोहनियों को जमीन पर टिकायेंगे। पैरों को थोडा सा सिर की तरफ झुकाते हुए स्थिर रहेंगे। श्वास छोडते हुए पैरों को धीरे–धीरे नीचे ले आएंगे। इस मुद्रा के अभ्यास से जठराग्नि प्रदीप्त होती है। हृदय, नेत्र, मस्तिष्क बलवान होते है। वीर्य रक्षा होती है, प्राणों की गति स्थिर होती है और पेट से संबंधित रोग दूर होते हैं, रक्त शुद्ध होता है। बाल और नेत्रों के लिए बहुत लाभदायक है।
6. **वज्रोली मुद्रा** – प्रजनन प्रणाली में सुधार हेतु यह एक महत्वपूर्ण मुद्रा है। इस मुद्रा के अंतर्गत मूत्रेंद्रिय में एक छोटी नली के द्वारा वायु का संचरण किया जाता है। इसके दो मुख्य भेद भी कहे गए है सहजौली और अमरोली।

सहजोलीश्चामरोलीर्वज्रोल्या एव भेदतः।
जलेसुभस्म निक्षिप्य दग्धगोमयसम्भवम्।।2/92।।
वज्रोली मैथुनादूर्ध्वं स्त्रीपुसोः स्वाङ्गलेपनम्।

आसीनयोः सुखेनैव मुक्तव्यापारयोः क्षणात्।।93।।

अर्थात् – सहजोली व अमरोली, वज्रोली मुद्रा के ही दो प्रकार है। इनमें सहजोली क्रिया को बताते हुए कहा है कि योगी साधक अथवा साधिका दोनों ही वज्रोली क्रिया करने के बाद जले हुए गोबर की उत्तम भस्म को पानी में मिलाकर अपने–अपने जननेन्द्रियों (लिंग व योनि) पर लेप करके लगाएं। यह क्रिया सहजोली कहलाती है। इसको करने के बाद साधक को कुछ समय तक सुखपूर्वक बैठना चाहिए।

सहजोलिरियं प्रोक्ता श्रद्धेया योगिभिः सदा।
अयं शुभकरो योगो योगिमुक्तिविमुक्तिदः।।94।।

अर्थात् : सभी योग अभ्यासों में सहजोली क्रिया को सदैव अत्यंत शुभकारी अर्थात् अच्छा फल प्रदान करने वाली कहा गया है। यह साधकों को मुक्ति व विशिष्ट मुक्ति प्रदान करवाने वाली होती है।

अयं योगः पुण्यवतां धीराणां तत्वदर्शिनाम्।
निर्मत्सराणां सिध्येत न तु मत्सरशालिनाम्।। 95।।

अर्थात् – इस सहयोजी क्रिया का अभ्यास पुण्य अर्थात् धार्मिक, धैय से युक्त व तत्वज्ञानियों अर्थात् यथार्थज्ञान रखने वाले, ईर्ष्या रहित और तृप्त अथवा शान्त (जो किसी वस्तु को पाने की इच्छा न रखते हो) साधकों को ही सिद्ध होता है।

अमरोली वर्णन

पित्तोल्वणत्वात्प्रथमाम्बुधारां विहाय निस्सारतयान्त्यधाराम्

निषेव्यते शीतलमध्यधाराकापालिके खण्डमतेऽमरोली।।96।।

अमरीं यः पिबेन्नित्यं नस्यं कुर्वन् दिने दिने।
वज्रोलीमभ्यसेत् सम्यगमरोलीति कथ्यते।।97।।

भावार्थ – मूत्र विसर्जन के समय मूत्र की पहली धार जिसमें पित्त की मात्रा अधिक होती है व आखिरी धार जो सार रहित होती है इन दोनों को छोडकर मध्य अर्थात् बीच की धार को पीने का उपदेश सभी खण्ड कापालिकों द्वारा किया गया है। इस क्रिया को अमरोली कहा गया है। नित्य प्रति जो साधक अपनी नासिका के द्वारा अपने ही मूत्र को पीता है और साथ ही

वज्रोली मुद्रा का भी अभ्यास करता है। इन दोनों के मिले हुए रूप को ही अमरोली क्रिया कहा जाता है।

7. **शक्तिचालिनी मुद्रा** – कुंडली को जागृत करने में यह मुद्रा विशेष लाभदायक है। सर्वप्रथम पद्मासन में बैठेंगे। दोनों हथेलियों को जमीन पर रखेंगे और नितंबों को जोर–जोर से धरती पर से उठा उठा कर ताडन करेंगे। कुछ समय ऐसा करने के पश्चात् जालंधर बंध लगाकर दोनों नासिकाओं से या फिर जो स्वर चल रहा है उसी नासिका से श्वास लेकर उसे रोक रखेंगे फिर गुदा द्वार को संकुचित करेंगे। जितनी देर श्वास को रोक रख सकते है उतनी देर रोके रखेंगे फिर जालंधर बंध खोलकर जिस नासिका से श्वास ली थी उसके विपरित नासिका से श्वास को बाहर निकाल देंगे यदि दोनों नासिकाओं से श्वास ली है तो दोनों नासिकाओं से ही बाहर निकालेंगे। यह मुद्रा सभी प्रकार के रोगों को दूर करती है और स्वास्थ्य प्रदान करती है।

8. **नभो मुद्रा** – स्थान पर खडे होकर मुंह को ऊपर करके जिव्हा को बाहर निकाल कर कंठ से वायु का पान किया जाता है। कुंभक के द्वारा कुछ समय रोके रखते है। इस मुद्रा के अभ्यास से सभी प्रकार के रोग दूर होते है।

9. **योनि मुद्रा** – सर्वप्रथम पद्मासन में बैठ जाएं और भ्रामरी प्राणायाम के समान ही दोनों हाथ के अंगूठों से कानों को हल्का सा बंद करें तर्जनी से नेत्रों की पलकों पर लाकर रखें मध्यमा से नाक के पास तथा अनामिका मुंह पर लाकर रख दें। कौवे की चोंच के समान मुंह बनाकर वायु को अंदर खेंचें। सिर्फ होठों को बंद करते हुए सामान्य रूप से नासिका से रेचक करें। इस मुद्रा के अभ्यास से मानसिक शांति मिलती है। बुढापा दूर होता है। नशे आदि की गलत आदतों से छुटकारा मिलता है। सही और गलत की पूर्ण जानकारी विवेक के द्वारा होती है।

10. **तड़ागी मुद्रा** – तडाग का अर्थ होता है तालाब। इसमें पेट के फैलने और संकुचन की क्रिया होती है। सर्वप्रथम एक आसन पर बैठ जाए दोनो पैरों को सामने की तरफ करें और दोनों पैरों

के मध्य थोडा फैसला दें। अब श्वास को बाहर निकालते हुए आगे की तफर झुकें और दोनों हाथों से पैरों के मध्य थोडा फैसला दें। अब श्वास को बाहर निकालते हुए आगे की तरफ झुकें और दोनों हाथों से पैरों के पंजों को पकड लें। गहरी श्वास लें और पेट को जितना हो सके उतना फुलाएं श्वास को बाहर निकालें और पेट का संकुचन करें, इस अवस्था में नजरें पूरी पैरों के पंजों के ऊपर टिकी रहेंगी। 8 से 10 बार तक इसका अभ्यास करें। इस मुद्रा के द्वारा मणिपुर चक्र उत्तेजित होता है और शरीर मे प्राण ऊर्जा का संचार होता है। मानसिक शांति प्राप्त होती है। श्वसन तंत्र को बल मिलता है, पाचन क्षमता बढती है तथा पेट के सभी अंग मजबूत होते हैं।

11. **मांडूकी मुद्रा** – सहस्त्रार चक्र से टपकने वाले अमृत का पान करने वाली एक महत्वपूर्ण मुद्रा है। सर्वप्रथम वज्रासन में बैठ जाएं लेकिन दोनों घुटनों के बीच फैसला रहेगा और दोनों नितंब जमीन पर टिक हुए रहेंगे। इस स्थिति में रहने पर मूलाधार पर दबाव का एहसास होना चाहिए। सिर बिल्कुल सीधा और दोनों हाथ घुटनों के ऊपर रहेंगे। अब अपनी जिव्हा को उल्टा करते हुए पीछे तालु तक लेकर जाएंगे और उसे पूरे मुंह में घुमाएंगे जिव्हा को आगे और दाएं बाएं पूरे मुंह में घुमाएंगे। अब जीव्हा को उल्टा करते हुए पीछे तालु तक लेकर जाएंगे और ब्रह्म रंध्र से टपकने वाले अमृत का पान करने की कोशिश करेंगे। यह क्रिया लगातार 5 मिनट तक की जा सकती है फिर धीरे–धीरे विश्राम करेंगे। इसके अभ्यास से मन और इंद्रियां शांत होती है। चेहरे और गले की मांसपेशियां मजबूत होती हैं, चेहरे पर से झुर्रियां दूर होती है, बूढापा दूर होता है। शरीर में स्थित चक्रों की जागृति होती है।

12. **शांभवी मुद्रा –** योग में शांभवी मुद्रा का विशेष स्थान है और इसे मां दुर्गा से जोड़ा गया है। एकाग्रता को बढ़ाने के लिए इसका अभ्यास किया जाता है। आसन पर बिल्कुल सीधे बैठ जाएं, गर्दन और कंधे बिल्कुल सीधे रहेंगे लेकिन शरीर में बहुत खिंचाव नहीं होना चाहिए। नासिका के अग्रभाग अथवा भ्रूमध्य में

अपनी दृष्टि को स्थिर रखना होता है। जितनी देर रूका जा सके उतनी देर रूकें और फिर धीरे–धीरे आंखों को बंद करते हुए उन्हें आराम दें। आज्ञा चक्र को जगाने वाली यह यह शक्तिशाली प्रक्रिया है। आंखों में स्नायु मजबूत होते हैं, आंखों की रोशनी बढती है। तनाव कम होता है, मानसिक रोग दूर होते है। शांभवी मुद्रा करते समय मूल बंध और उड्डीयान बंध का भी प्रयोग किया जा सकता है। महर्षि घेरंड ने शांभवी मुद्रा को ''बड़े घर की बहू'' की उपाधि दी है।

13. **अश्विनी मुद्रा –** मूलाधार चक्र को जागृत करने के लिए यह मुद्रा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। सर्वप्रथम सुखासन या कागासन में बैठ जाएं। अपने गुदा द्वार को बार–बार फैलाएं और सिकोड़े। यही अश्विनी मुद्रा है। यह क्रिया आसानी से 5 से 10 मिनट तक की जा सकती है। बवासीर और यौन रोग दूर होते है। ऊर्जा का स्तर बढ़ता है। शारीरिक और मानसिक दृढता होती है। तनाव कम होता है। पेट से संबंधित परेशानियां कब्ज, गैस आदि दूर होते है। मूत्र रोग दूर होते हैं।

14. **अगोचरी मुद्रा –** मानसिक शांति हेतु इस मुद्रा का प्रयोग बहुत ही लाभदायक सिद्ध होता है। किसी भी ध्यानात्मक आसन में बैठकर आंखें बंद करें तीन बार गहरी श्वास लें और बाहर निकालें फिर आंखों को खोलें और अपनी दृष्टि को नाक के अग्रभाग पर लगा दें। कुछ समय इसी अवस्था में रहें और धीरे–धीरे आंखों को बंध करें और थोडी देर बाद पुनः यही क्रिया दोहराएं। इसके अभ्यास से प्राण ऊर्जा पर नियंत्रण होता है। आज्ञा चक्र जागृत होता है। नेत्र विकार दूर होते है। एकाग्रता बढ़ती है।

15. **पाशिनी मुद्रा –** पाश का अर्थ होता है, फंदा और इसमें दोनों पैर फंदे के समान गले के पीछे डाल दिए जाते है इसी कारण से पाशिनी मुद्रा कहा जाता है। सर्वप्रथम आसन पर बिल्कुल सीधे लेट जाएं दोनों पैरों को धीरे–धीरे ऊपर उठाएं और दोनों हाथों का सहारा देते हुए उन्हें सिर के पीछे की तरफ इस प्रकार लेकर जाएं की दोनों पैर गर्दन के नीचे आ जाएं और

एक–दूसरे से जुडे हुए रहें। दोनों हाथों को नमस्कार की मुद्रा में अपने हृदय के पास लाकर रखें। गहरी श्वास लेते हुए दोनों हाथों को ऊपर की तरफ लेकर जाएं इसी अवस्था में और श्वास को बाहर निकालते हुए पुनः नीचे लाएं यही क्रिया दोहराते जाएं जब तक की संभव हो। लगभग 5 से 10 मिनट यह क्रिया करने के बाद पूर्वोत्तर स्थिति में आ जाएं दोनों पैरों और हाथों को सीधा कर लें और फिर शवासन में विश्राम करें। इस मुद्रा के अभ्यास से कुंडलिनी शक्ति जागृत होती है, शरीर में और मस्तिष्क में ऊर्जा तथा बल की प्राप्ति होती है। रक्त का प्रवाह सुचारू होता है और मानसिक शांति मिलती है।

16. **भूचरी मुद्रा –** नासिका के अग्र भाग से चार अंगुल दूर आकाश में मन पूर्ण रूप से स्थिर करना ही भूचरी मुद्रा है। सर्वप्रथम आसन पर पद्मासन में बैठ जाएं अपना एक हाथ उठाते हुए ऊपर के होंठ को हल्का सा दबाएं और हथेली को इस प्रकार से आंखों की दूरी पर रखें की हथेली का रूख जमीन की तरफ रहे। बिना पलक झपकाए लगातार कनिष्ठिका उंगली को देखने का प्रयास करे। जब सिर में थोडा भारीपन लगे तो आंखों बंद करें और विश्राम की स्थिति में आ जाएं। यह मुद्रा एकाग्रता को बढाने वाली होती है और मन को शांत करके शरीर और दिमाग को स्थिर करती है।

17. **चाचरी मुद्रा –** पद्मासन में बैठ जाएं। ज्ञान मुद्रा लगा लें अपनी श्वासों के आने और जाने के ऊपर ध्यान दें। तत्पश्चात् अपने मन को स्थिर कर पूरी तरह से अपने आज्ञा चक्र में लगा दें। मानसिक शांति के लिए यह मुद्रा श्रेष्ठ है।

18. **उन्नति मुद्रा –** मस्तिष्क में आने जाने वाले विचारें को शांत करने के लिए इस मुद्रा का प्रयोग किया जाता है। सर्वप्रथम किसी भी ध्यानात्मक आसन में बैठ जाएं। गर्दन, कमर, कंधों को बिल्कुल सीधा रखें और हथेलियों को घुटनों के ऊपर रखें। धीरे–धीरे गहरी श्वास लें और बाहर निकालें यह क्रिया तीन बार करें। श्वास के ऊपर ध्यान देते हुए पूर्णरूपेण जागरूक हो जाएं और अपना ध्यान अपने चक्र के ऊपर लगा दें एक–एक

करके सभी चक्रों के ऊपर ध्यान को स्थिर करें। यही क्रिया 10 से 15 मिनट करें। आंखें बंद करके कहीं भी ध्यान को लगाया जा सकता है, मन को एकाग्र और शांत किया जा सकता है। तनाव और मानसिक विकारों को दूर करने में यह मुद्रा फलदाई होती है।

19. **पंचधारणा मुद्रा –** पंच धारणा मुद्रा के अंतर्गत पांच अलग–अलग मुद्राएं है। पंच तत्व – आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी। जिनसे हमारी सृष्टि का निर्माण हुआ है। उन्हीं से जुडी हैं, ये पांचों मुद्राएं। पंच धारणा के विषय में महर्षि पतंजलि ने कहा है– अर्थात् किसी भी एक बिंदु पर अपने चित् को पूरी तरह एकाग्र कर लेना धारणा है। पंचतत्व अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश पर अपनी धारणा को या चित् को लगा लेना ही पंच धारणा कहलाती है। यह पांच प्रकार की होती है।

पृथ्वी धारणा – पृथ्वी तत्व पर धारणा ही पृथ्वी धारणा कहलाती है। इसका स्थान पैर से जानू तक का कहा गया है और इस तत्व के रचयिता ब्रह्मा है। इसकें अंतर्गत सर्वप्रथम वायु को आरोपित करके उसे बीज मंत्र लं से युक्त किया जाता है और फिर ब्रह्मा का ध्यान हृदय में करके कुंभक किया जाता है। धीरे–धीरे कुंभक का समय बढ़ाया जाता है और इसी अवस्था में पृथ्वी तत्व पर विजय प्राप्त करके पृथ्वी मुद्रा को धारण किया जाता है। चित् को पृथ्वी में उसकी गंध में और उसके स्वरूप में धारण करना ही पृथ्वी मुद्रा है। इस क्रिया को करने में पांच घटी अर्थात् 2 घंटे का समय लगता है। इसके अभ्यास से धरती को धारण करने की क्षमता व्यक्ति में आ जाती है। अर्थात् वह संसार में विजय प्राप्त करता है। मृत्यु पर विजय प्राप्त करने की क्षमता भी मनुष्य को प्राप्त होती है।

आम्भसी धारणा – जल तत्व पर जब धारणा की जाती है तो वह आम्भासी धारणा कहलाती है। इसके अंतर्गत चित् को जल में पूरी तरीके से समाहित कर दिया जाता है इसका समय भी पांच घटी अर्थात् दो घंटे का होता है। इसे धारण करने से जल में भी व्यक्ति सुरक्षित रह सकता है। गहरे से गहरे जल में भी उसकी मृत्यु नही

होती । इसका स्थान जानू से गुदा तक माना गया है। जल तत्व में वायु को आरोपित करके बीज मंत्र वं को उसमें युक्त किया जाता है तथा चतुर्भुज भगवान को हृदय में धारण किया जाता है। इसके अभ्यास से व्यक्ति को जल से किसी भी प्रकार का भय नहीं रहता है।

आग्नेयी धारणा – इसे वैश्वानरी धारणा भी कहा जाता है। अग्नि तत्व पर अपने चित् को धारण कर देना ही आग्नेयी धारणा है। अग्नि का स्थान नाभि है और बीज मंत्र रं है, इसके देवता भगवान रूद्र कहे गये हैं, गुदा से हृदय पर्यन्त यह व्याप्त है। इसमें भी दो घंटे धारणा का समय है। इसके अभ्यास से व्यक्ति को अग्नि का भय नहीं रहता है और पाचन तंत्र अत्यंत मजबूत होता है।

वायवीय धारणा – वायु में धारणा करना अर्थात् प्राण कोष को पूर्णरूपेण बल प्रदान करना। इससे जन्म और मृत्यु पर पूरी तरह नियंत्रण होता है। इसका समय भी पांच घटी अर्थात् दो घंटे का है, दो घंटे तक वायु में अपने चित् को पूरी तरह लगा देना। इसका स्थान हृदय से गले तक है और बीज मंत्र यं कहा गया है और वह ईश्वर जो सत्व गुणों से युक्त है इसका स्वामी है। इसके अभ्यास से साधक को वायु गमन की शक्ति प्राप्त होती है अर्थात् वायु के द्वारा साधक को किसी प्रकार का कोई भय नहीं रहता। शरीर में प्राण शक्ति का संचार होता है। फेफडों से संबंधित सारी परेशानियां दूर होती हैं, रक्त संचार सुचारू होता है।

आकाशी धारणा – इसके अंतर्गत आकाश में अपने चित् को धारण किया जाता है और कुंभक किया जाता है। 2 घंटे का समय इसमें भी निश्चित है। इसका स्थान भृकुटी से सहस्त्रार तक का बताया गया है। आकाश तत्व में वायु को गमन कर बीज मंत्र हं के द्वारा भृकुटी के मध्य दो घंटे तक कुंभक की स्थिति में रहा जाता है और फिर शिव का ध्यान करें। इसके अभ्यास से आकाश गमन की शक्ति प्राप्त होती है। मोक्ष की प्राप्ति होती है।

20. **काकीमुद्रा –** मुख को कौओ की चोंच के समान करके उसके द्वारा धीरे–धीरे वायु को मुख में प्रवेश करवाया जाता है और

नाक से श्वास को बाहर निकाल दिया जाता है। यही काकीमुद्रा है यह गर्मी से संबंधित रोगों को दूर करती है।

21. **मातंगिनीमुद्रा** – इस मुद्रा में कंठ तक के जल में खडे होकर नासिका से जल को खेंचकर मुंह से बाहर निकाला जाता है इसका अभ्यास जलनेती के पश्चात करना चाहिए। इसके अभ्यास से नेत्र रोग दूर होते है और मस्तिष्क में स्थिरता लेकर आने वाला अभ्यास है।
22. **भुजंगिनी मुद्रा** – किसी भी ध्यानात्मक आसन में बैठकर मुंह से बाहर की हवा को भीतर खेंचे और पेट में हवा भर जाने पर डकार के साथ उसे बाहर निकाल दें यही भुजंगिनी मुद्रा है। यह सभी प्रकार के उदर रोगों को नष्ट करती है।
23. **हस्त मुद्राएं** – हस्त मुद्राओं का भी योग साधना में विशिष्ट स्थान है। हाथों की अंगुलियां पंचमहाभूतों का प्रतिनिधित्व करती है। शरीर इन्हीं पांचों तत्वों से निर्मित है और यदि इनमें कोई विकार उत्पन्न हो जाता है तो शरीर रोगग्रस्त हो जाता है। योग क्रियाओं के माध्यम से इन दुष्परिणामों से बचा जाता सकता है। हमारा अंगुष्ट अग्नि तत्व का, तर्जनी वायु तत्व का, मध्यमा आकाश तत्व का, अनामिका पृथ्वी तत्व का, तथा कनिष्ठिका जल तत्व का प्रतिनिधित्व करती है। इन सभी के सामंजस्य से शरीर रोग मुक्त होता है तथा आध्यात्मिकता की तरफ व्यक्ति बढता है।

प्रमुख हस्त मुद्राएं –

ज्ञान मुद्रा – ज्ञान मुद्रा को ही चिन मुद्रा भी कहा जाता है। अंगूठे और तर्जनी अंगुली को मिलाकर बनती है जबकि अन्य अंगुलियां सीधी रहती है।

लाभ – यह मुद्रा ज्ञान और समझ को बढाती है, मानसिक शांति प्रदान करती है और ध्यान की गहराई को बढ़ाती है।

प्राण मुद्रा – अंगूठा, अनामिका और छोटी अंगुली को मिलाकर बनती है, जबकि तर्जनी और मध्यमा अंगुलियां सीधी रहती है।

लाभ – यह जीवन शक्ति (प्राण) को सक्रिय करती है और ऊर्जा के स्तर को बढाती है। यह थकान औन मानसिक तनाव को कम करती है।

अंजलि मुद्रा – दोनों हथेलियों को दिल के पास मिलाकर बनती है। यह हमारी नमस्ते की स्थिति भी है। इसमें हाथों के अंगूठे अनाहत चक्र को स्पर्श किए हुए रहते है।

लाभ – यह मुद्रा विनम्रता, कृतज्ञता और संतुलन को प्रकट करती है। यह हृदय चक्र को संतुलित करने में सहायक होती है।

शून्य मुद्रा – मध्यमा अंगुली को अंगूठे की जड़ से लगाकर, अंगूठे से दबाया जाता है, जबकि अन्य अंगुलियां सीधी रहती है।

लाभ – यह मुद्रा कान की समस्याओं और थायराइड को दूर करती है। यह संतुलन और स्थिरता को बढाती है।

वरूण मुद्रा – अंगूठे और छोटी अंगुली को मिलाकर बनती है।

लाभ – यह जल तत्व को संतुलित करती है, त्वचा की समस्याओं को दूर करती है और हाइड्रेशन को बढावा देती है।

वायु मुद्रा – जब वायु तत्व को अग्नि तत्व के मूल भाग में लगाया जाता है तो यह वायु मुद्रा होती है। सर्वप्रथम तर्जनी को अंगूठे के मूल में लगाएंगे और अंगूठा तर्जनी के ऊपर लाकर रखेंगे इस स्थिति में बहुत ज्यादा दबाव नहीं होना चाहिए। शेष अंगुलिया सीधी रहेगी। वात से संबंधित सभी रोगों को दूर करने के लिए इस मुद्रा का प्रयोग किया जाता है। शरीर में कहीं पर भी दर्द है, गठिया, साइटिका सर्वाइकल जैसे रोगों में इसका विशेष अभ्यास करवाया जाता है जिनकों भी गैस से संबंधित परेशानियां है उन्हें इसका अभ्यास करना चाहिए।

शंख मुद्रा – शंख की आकार का होने के कारण इसे शंख मुद्रा कहा गया हैं। शंख को भारतीय संस्कृति में पवित्रता और शुद्धता का प्रतीक माना गया है और इसी कारण इस मुद्रा को ध्यान और प्राणायाम के समय शांति की प्राप्ति हेतु लगाया जाता है।

अपनी दोनों हाथ की हथेलियों को अपने सामने रखें। बायें हाथ के अंगूठे को दाहिने हाथ की मुटठी में रखें तथा दायें हाथ की अंगूलियों को बायें हाथ के अंगूठे के चारों ओर लपेट ले, बायें हाथ की बची अंगूलियां सीधी रहेंगी और उपर की तरफ रहेगी लगभग 10 मिनट इसी मुद्रा को बनाये रखते हुए स्थिर रहे। इस मुद्रा के अभ्यास से गले के रोग ठीक होते है और वाणी प्रभावशाली बनती है। यह मानसिक तनाव और चिंता को कम करती है। शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढाती है, मन और शरीर के मध्य सामंजस्य स्थापित करती है।

आकाश मुद्रा – अंगूठे के अग्र भाग को मध्यमा के अग्र भाग से मिलाने पर आकाश मुद्रा बनती है, शेष अंगुलियां सीधी रहती हैं, इस मुद्रा के अभ्यास से कान से संबंधित सभी रोग दूर होते हैं और यह नेत्रों के लिए भी उपयोग होती है।

व्यान मुद्रा – मध्यमा और तर्जनी के अग्र भाग को अंगूठे के अग्र भाग से मिलाने पर व्यान मुद्रा बनती है। इसके अभ्यास से शरीर में स्फूर्ति का संचार होता है।

रूद्र मुद्रा – दोनों हाथों की तर्जनी, अनामिका तथा अंगूठी के सिरों को एक साथ मिलाने से ओर फिर मध्यमा तथ छोटी अंगुली को सीधा रखकर बाहर की ओर फैलाने से रूद्र मुद्रा बनती है। इसके अभ्यास से उदर के अंग मजबूत होते हैं, आत्मविश्वास बढ़ता है, स्फूर्ति, सुस्ति और आलस्य दूर होता है।

पृथ्वी मुद्रा – अनामिका के अग्र भाग और अंगुठे के अग्र भाग को मिलायें शेष सभी अंगुलियों को सीधा रखें। इसके अभ्यास से शारीरिक सुदृढ़ता और चेहरे पर तेज की प्राप्ति होती है।

सूर्य मुद्रा – अनामिका को अंगूठे की जड़ मे लगायें तथा उसे अंगूठे से दबायें शेष सारी अंगुलियां सीधी रहेंगी यही सूर्य मुद्रा है। मोटापा कम करने के लिए सर्दी संबंधी रोगों के दूर करने के लिए यह मुद्रा उपयोगी है।

योगिक षट्कर्म

हठ योग में बताई गई शारीरिक शोधन की छः महत्वपूर्ण क्रियाएं ही षट्कर्म हैं। षट् का अर्थ है, छः और कर्म अर्थात् कार्य। छः प्रकार के कार्य जिनसे शारीरिक शुद्धि की जाती है। इन 6 क्रियाओं के अभ्यास से शरीर में स्थित भीतरी मल को दूर किया जाता है।

शरीर की आंतरिक शुद्धि करके उसे स्वस्थ बनाया जाता है और शारीरिक और मानसिक शांति भी इनके द्वारा प्राप्त होती है। शरीर के आंतरिक संस्थान पाचन तंत्र, श्वसन तंत्र मजबूत होते है और स्वस्थ होते हैं। मानव शरीर में त्रिदोष के रूप में वात, पित्त और कफ कहे गए है। षटकर्मों के अभ्यास से इनमें संतुलन बनाया जाता है।

धौतिर्बस्तिस्तथा नेविस्त्रातकं नौलिंक तथा
कपालभातिश्चैतानि षटकर्माणि प्रचक्षते।।22।। हठयोग प्रदीपिका

अर्थात्

धौती, वस्ति, नेति त्राटक, नौली तथा कपालभाति यह छह क्रियाएं होती है।

1.धौती – धौती के द्वारा आहार नलिका की सफाई कर पाचन तंत्र को मजबूत बनाया जाता है।
यह तीन प्रकार की होती है।

वस्त्र धौती
दंड धौती
गजकरणी

वस्त्र धौती – एक मलमल का कपड़ा जो 7 मीटर लंबा और 3 इंच चौड़ा होता है। उसके द्वारा इसका अभ्यास किया जाता है। सर्वप्रथम इसे गर्म पानी से अच्छे से धोकर नमक के पानी में भिगों दें और

कपड़े के दोनों छोर को पकड़ कर धीरे–धीरे चबाते हुए पेट में उतार लें। पहले दिन आधा मीटर के करीब कपड़ा ही निगलें और धीरे–धीरे हर दिन थोड़ा बढ़ाते जाएं एक साथ नहीं निगलना है लगभग 15 से 20 दिन तक इसका अभ्यास करना है। धीरे–धीरे पूरा कपड़ा निगल कर फिर उसे दोनों हाथों से पकड़ कर बाहर निकालना चाहिए ध्यान रहे निकालते समय बहुत तेजी के साथ नहीं निकालना है और बहुत धीरे भी नहीं निकालना है। मध्य अवस्था होनी चाहिए। यदि कपड़ा कहीं अटक जाए तो एक घूंट पानी पिला करके फिर उसे ध्यान से निकालें। शुरू में यदि धौति को निगलने में भी परेशानी हो तो 1 से 2 घूंट पानी पिलाकर उसके साथ निगला जा सकता है। यदि निगलते समय किसी कारणवश रूकावट आ जाए तो थोड़ा नमक वाला पानी पीकर वमन के साथ उसे निकाला जा सकता है। जब धौती बाहर निकलेगी तो उसके साथ अंदर जमा हुआ कफ भी बाहर आएगा तत्पश्चात् उसे अच्छे से धोकर पुनः प्रयोग लिया जा सकता है। धौती क्रिया अस्थमा, खांसी, प्लीहा, ज्वर, ठंड से संबंधित रोगों को दूर करने में लाभदायक सिद्ध होता है। इसके अभ्यास से पेट का सारा कफ बाहर आ जाता है।

दंड धौती – दंड धौती के लिए एक लचीली रबड़ की पाइप का प्रयोग किया जाता है जो 15 से 18 इंच लंबी होती है। इसे गर्म

जल के पात्र में डालकर उबाल लिया जाता है। जिस तरफ दो छोटे छिद्र होते है उसी तरफ से दंड को धीरे–धीरे मुख्य द्वार से अंदर डालना होता है और जिधर एक बड़ा छिद्र है उसे उंगली से बंद कर दिया जाता है। जैसे ही कंठ में दंड पहुंचे अंगुली को हटा ले। सर्वप्रथम उत्कटासन में बैठकर तीन से चार गिलास पानी पीना चाहिए। दंड को पकड़कर मुख में धीरे–धीरे डालना चाहिए और ऐसे ही निगलना चाहिए जैसे भोजन करते समय कोई बड़ा ग्रास निगला जाता है। गले और कंधों की मांसपेशियों को कोई खिंचवा ना दें। धीरे–धीरे इसको पेट के अंदर तक पहुंचाया जाता है और कुछ सिरा बाहर ही रखा जाता है आगे की तरफ थोड़ा झुकने से पानी इसी दंड से बाहर आने लगता है। जब पानी बाहर आ जाए तो एक बार सीधे खड़े हो जाएं और फिर से थोड़ा झुकें इससे पेट का जितना भी पानी बचा है वह हरे या पीले रंग के रूप में बाहर निकलेगा जो पित्त और कफ होगा। जब पेट का सारा पानी बाहर निकल जाए तो इसे धीरे–धीरे हल्के हाथों से बाहर निकाल लेना चाहिए। प्रथम दिन यह क्रिया नहीं हो सकेगी इसलिए लगभग 15 से 20 दिन तक इसको धीरे–धीरे अभ्यास के साथ करें। दंड धौती के अभ्यास से उदर शुद्धि होती है और कफ का शमन हो जाने के कारण पाचन क्रिया सुचारू होती है और शरीर स्वस्थ व निरोगी होता है। शरीर में स्फूर्ति और ऊर्जा का संचार होता है और मन में उत्साह बढ़ता है।

सावधानियां – जिनको अल्सर और हर्निया की परेशानी है उन्हें यह नहीं करना है। कंधे और गले की कोई सर्जरी होने पर यह नहीं करना है। उच्च रक्तचाप और निम्न रक्तचाप तथा हृदय से संबंधित कोई भी परेशानी होने पर इसे नहीं करना है। मिर्गी होने पर भी इसे नहीं करना है।

गजकरणी (कुंजल)– कुंजल, पानी पीकर उसे सावधानी से बाहर निकाल देना ही कुंजल कहा जाता है।

पेट से दूषित पदार्थ को बाहर निकालने की यह बहुत ही अच्छी क्रिया है।

प्रयोग विधि – सर्वप्रथम 4 से 5 लीटर पानी को बहुत अच्छे से उबाल लें। अगर किसी प्रकार की फिल्टर का पानी प्रयोग में लें तो उसे भी उबाल लेनाचाहिए। इसमें थोडा संधा नमक मिला लें। प्रयोग में लेते समय पानी गुनगुना होना चाहिए।

सर्वप्रथम उकडु बैठ जाएं। एक गिलास पानी पीते जांए ऐसा तब तक करें जब तक की आपको वमन जैसा होने लगे। इस स्थिति में पेट पूरा पानी से भर जाएगा। जब बिल्कुल भी पानी ना पिया जाए तो अपनी जगह पर खड़े हो जाएं दोनों पैरों के मध्य थोड़ा फैसला दें और आगे की और झुक कर 90 डिग्री का कोण बना लें। अपना बायां हाथ कमर के ऊपर पीछे रखें और दाएं हाथ की तीन उंगलियां तर्जनी माध्यमा और अनामिका या दो उंगलियां तर्जनी और मध्यमा को गले में सावधानीपूर्वक डालें। ऐसा करते ही वमन होने लगेगा। यही क्रिया करते हुए पेट का सारा पानी बाहर निकाल दें। अंत में जब खट्टा या चरपरा पानी बाहर निकले तो यह समझ लीजिए कि आमाशय में और पित्त स्थित है और वह पूर्णतः नहीं निकला है अतः पुनः दो तीन गिलास गर्म पानी पीकर पुनः वमन करें। कुंजल के द्वारा पेट की पूरी शुद्ध हो जाती है जिससे सभी प्रकार के उदर विकार, कब्ज आदि दूर होते हैं। पेट के साफ हो जाने के कारण त्वचा संबंधित रूप फोड़े फुंसियां आदि नहीं होते है। नेत्रों के लिए बहुत लाभदायक होता है। मुख पर तेज बढ़ता है।

2. बस्ति कर्म – किसी भी जलाशय, नदी या टब में बैठकर बस्ती कर्म किया जा सकता है। बस्ती के विषय में हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है।

नाभिदाघ्नजले पायुन्यस्तनालोत्कटासनः ।
आधाराकुंचनं कुर्यात् क्षालनं बस्तिकर्म तत्।।

अर्थात नाभि तक जल में उत्कटासन में बैठकर गुदा मार्ग में आंकुचन करना चाहिए। यह प्रक्षालन करने वाला बस्ती कर्म होता है।

यह क्रिया करने के लिए बांस या रबड़ की नली का प्रयोग किया जाता है। पहले बांस से बनी नली ही प्रयोग में ली जाती थी पर अभी रबड़ की नली उपयुक्त रहती है। यह नली छह अंगुल लंबी होती है और कनिष्ठिका अंगुली के जितनी इसकी मोटाई होनी चाहिए। सर्वप्रथम उस नली पर घी लगा लें। उत्कटासन अर्थात् उकड़ू बैठकर मध्यमा उंगली में घी लगाकर गणेश क्रिया करें। गणेश क्रिया का अर्थ होता है कि घी लगी हुई मध्यमा उंगली को गुदा के अंदर लगभग 2 इंच तक डालकर चारों तरफ घुमाएं। फिर रबड़ की नली के पतले सिरे को गुदा के अंदर लगभग चार अंगुल तक धीरे–धीरे प्रविष्ट करें। उत्कटासन में बैठकर दोनों हाथों की कोहनियों को घुटनों पर रखे हुए हथेलियों की उंगलियों को आपस

में कसकर पकड़ लें। इस स्थिति में बैठे हुए नौली कर्म की भांति नाल को फुलाने से पानी गुदा मार्ग के द्वारा अपने आप ही ऊपर चढ़ने लगता है और वह आंतों में पहुंच जाता है। जब तक नाल निकले रहेंगे तब तक पानी आंतों में चढ़ता जाएगा नाल को स्वाभाविक अवस्था में छोड़ते ही पानी बाहर निकलने लगेगा। जब पर्याप्त पानी चढ़ जाए उसके तुरंत बाद ही हाथ की उंगली से नली का मुंह बंद कर देना चाहिए और धीरे–धीरे नली को गुदा से बाहर निकाल कर खड़े हो जाना चाहिए तब पानी से बाहर निकल कर नली को एक तरफ रखकर नौली की क्रिया करें। नौली के द्वारा आंतें में जमा हुआ मल पानी के साथ मिलकर मलाशय में एकत्र हो जाता है और फिर शौचालय जाकर उसका उत्सर्जन कर देना चाहिए। इस प्रकार आंतों और मलाशय की पूरी शुद्ध हो जाती है। यह क्रिया तीन से चार बार की जा सकती है। अंतिम बार करने से बचा हुआ थोड़ा भी मल शरीर से बाहर निकल जाएगा। इसके पश्चात् मयूरासन करके सम्पूर्ण पानी को बाहर निकाल देना चाहिए। बस्ती क्रिया के द्वारा वायु रोगों का नाश होता है। शरीर का सारा मल बाहर निकलता है और आतें मजबूत होती है। सावधानी इस बात की बरती जानी चाहिए कि हाथों के नाखून कटे होने चाहिए नही ंतो क्रिया करते समय अंदर चोट लग सकती है। आज के परिवेश में बस्ती को एनिमा से भी जोड़ा जाता है परंतु यह एक अलग क्रिया है।

3. **नैतिकर्म –** नैतिकर्म का मुख्यतः संबंध नासिका से है। यह एक महत्वपूर्ण क्रिया कही गई है और इसे मातंगिनी भी कहा जाता है। यह दुग्ध व घृत के द्वारा भी की जाती है परंतु मुख्यतः जल ही सर्वोपरि रहता है। इसमें जल को एक नासिका छिद्र से डालकर दूसरे से निकालना होता है। इसके दो भेद होते है। जल नेति और सूत्र नेति।

जलनेति – इसके लिए एक विशेष प्रकार की नली वाला लोटा बाजार में मिलता है। लोटा स्टील और प्लास्टिक दोनों का ही हो सकता है। सर्वप्रथम पानी को अच्छे से उबाल लें ठंडा होने तक इंतजार करें जब पानी गुनगुना रह जाए उसमें थोड़ा नमक मिला लें। लोटे को बहुत अच्छे से गर्म पानी से धोकर फिर नमक मिला

हुआ पानी उसमें भरें। उकडूं बैठ जाएं। बायां हाथ बाएं घुटने के ऊपर सीधा रखा हुआ रहेगा और दाएं हाथ से लौटा पकड़कर उसकी नली को अपनी दायीं नासिक के छिद्र में लगाएं। गर्दन को बाई तरफ से थोड़ा मोड कर टेढ़ा करें। मुंह को खोलें नाक से श्वास अंदर नहीं जानी चाहिए मुंह खुला रहेगा। अब धीरे–धीरे लोटे से पानी को नासिका के अंदर डालें अपने आप दायीं नासिका से डाला हुआ पानी बायीं नासिक से निकलने लगेगा। जब पानी खत्म हो जाए तब यही क्रिया दूसरे नासिका छिद्र से भी दोहराएं। जब दोनों ही नासिका छिद्रों से जल क्रिया कर ली जाए तब तेजी से श्वास को बाहर निकालें और कपालभाति करें ताकि यदि पानी सिर में भी चला गया है तो वह सारा बाहर आ जाए। जब तक नासिका से सारा पानी बाहर ना आ जाए तब तक कपालभाति करते रहें। जल नेती की यह क्रिया खड़े होकर आगे की तरफ थोड़ा झुक कर भी की जा सकती है।

लाभ – इस क्रिया से मस्तिष्क और नेत्र संबंधी सभी दोष दूर होते है। कान संबंधी विकारो ंको दूर करने में भी यह लाभदायक सिद्ध होता है। बालों का सफेद होना और झड़ना दूर होता है। जिनको सर्दी से संबंधित और एलर्जी की परेशानी रहती है उन्हें यह करना ही चाहिए। श्वास संबंधित परेशानियों में भी जल नेति लाभदायक सिद्ध होती हैं।

सूत्र नेति – सूत्र नेति के विषय में हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है –

सूत्रं विस्ततिसुस्निग्धं नासानाले प्रवेशयेत्।
मुखान्निर्गमयेच्चैषा नेतिः सिद्धैर्निगद्यते।।29।।

अर्थात् सूत्र को नासिका में प्रविष्ट कर मुख मार्ग से निकालना सिद्धों के द्वारा नेति कहलाता है। इस क्रिया को करने के लिए विशेष प्रकार के बने हुए सूत्र बाजार में मिलते है। इसके आगे वाले भाग पर मोम लगा रहता है। सबसे पहले यह देखना आवश्यक हो जाता है कि हमारा कौनसा स्वर चल रहा है। जो स्वर चल रहा है इस तरफ के नासिका छिद्र से सूत्र को अंदर डालेंगे। सर्वप्रथम सूत्र को पानी में भिगो दिया जाता है और नासिका में शुद्ध गाय के घी की दो बूंदे डालें। तत्पश्चात् उकडु बैठें और अग्रभाग से थोड़ा झुक कर सूत्र का मोम वाला भाग धीरे–धीरे नासिक छिद्र में डाले। जब उसका उग्रभाग जिव्हा के पास आ जाए तो दाहिने हाथा की तर्जनी और मध्यमा उंगली से पडकर धीरे–धीरे मुख से उसके अग्रभाग को बाहर निकलना चाहिए। यह क्रिया दूसरे नोसिका छिद्र से भी दोहराएं। प्रथम दिन थोड़ा ही सूत्र अंदर जाएगा पर धीरे–धीरे जब अभ्यास किया जाएगा तो 15 से 20 दिन के अंदर पुरी क्रिया होने लगेगी। जब अभ्यास हो जाए तो सूत्र के दोनों छोर पकड़कर धीरे–धीरे घर्षण करना चाहिए। जब क्रिया हो जाए तो अंत में गाय के घी की बूंद पुनः नासिका में लगायें गाय का घी उपलब्ध नहीं हो तो बादाम रोगन तेल भी प्रयोग में लिया जा सकता है।

लाभ – इस क्रिया से कफ आदि दोष दूर होते है। नजला, जुकाम, कारण विकार नासिक से संबंधित विविध रोग गले और मुख से संबंधित रोग भी दूर होते है। नासिका की हड्डी जब बढ़ जाती है तो यह क्रिया करनी चाहिए। नेत्र ज्योति को बढ़ाने वाला होता है।

4. त्राटक क्रिया – त्राटक के विषय में हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है।

अथ त्राटकम्।

निरीक्षेन्नितश्चलदृशा सूक्ष्मलक्ष्यं समाहितः।
अश्रुसम्पातपर्यन्तमाचार्येस्त्रातकं समृतम्।।31।।

अर्थात् एकाग्रचित हुआ मनुष्य सूक्ष्म लक्ष्य अर्थात् लघु पदार्थ को तब तक देखें जब तक अश्रुपात ना हो जाए। आचार्यों द्वारा इसे त्राटक कर्म कहा गया है। एकाग्रता को बढ़ाने के लिए और मन की चंचलता को खत्म करने के लिए त्राटक क्रिया महत्वपूर्ण है। किसी भी एक विशेष बिंदु के ऊपर टकटकी लगाकर देखना ही त्राटक है। महर्षि पतंजलि ने अपने अष्टांग योग में धारणा के विषय में जो कहा है उसे भी त्राटक के साथ समायोजित किया जा सकता है। यह ध्यान के पहले की अवस्था होती है। त्राटक दीपक, सूर्य और चंद्रमा आदि के साथ भी किया जाता है। दीवार पर कोई भी काले रंग का

बिंदु लगाकर उसके ऊपर पूरा ध्यान लगाकर भी किया जा सकता है। यहां हम दीपक की लौ के साथ त्राटक क्रिया के विषय में बताने जा रहे है यही क्रिया अन्य बिंदुओं के साथ भी की जा सकती है।

विधि – सुखासन या पद्मासन में बिल्कुल सीधे बैठ जाएं कमर कंधे बिल्कुल सीधे रहेंगे। दीपक में शुद्ध गाय का घी या सरसों का तेल प्रयोग में ले। दीपक को ऐसे किसी स्थान पर रखें जिससे कि वह आंखों के बिल्कुल सीध में रहेगा और उससे एक से डेढ मीटर की दूरी पर बैठें। अब दीपक की लौ के ऊपर लगातार दृष्टि लगाए रखें अर्थात् एक टक उसे देखते रहें जब तक की आंखों से पानी न आने लगे। जब आंखों से पानी आने लगे तो आंखें बंद कर लें और अंदर क्या दिखाई दे रहा है उसे देखें। थोड़ी देर बाद पुनः वही क्रिया दोहराएं ऐसा तीन से पांच बार करें। सारा ध्यान दीपक की लौ के ऊपर ही रहेगा अंत में आंखें बंद करके मस्तिष्क को बिल्कुल शांत कर लें और पांच बार गहरी श्वास लें और बाहर निकालें तथा ओउम् का गुंजार करके दोनों हाथों को आपस में रगड़ कर गर्म करें और आंखों के ऊपर लाकर रखें। धीरे–धीरे आंखों को खोंलें। शुरू में ज्यादा देर नहीं रख पायेंगे पर धीरे–धीरे अभ्यास के साथ लगभग 15 मिनट तक का समय बढ़ाएं। जब समय बढ़ने लगेगा और स्थिरता आने लगेगी तो एक विशेष प्रकार के प्रकाश का एहसास होने लगेगा।

लाभ – त्राटक के द्वारा समस्त चित्त वृत्तियों का निरोध होकर मन एकाग्र होता है और धीरे–धीरे समय बढाने पर ध्यान की अवस्था लगने लगती है। समाधि तक पहुंचने वाले मार्ग के लिए यह प्रमुख सिद्धि के रूप में कार्य करता है। नेत्र संबंधी दोष को दूर करता है। नेत्रों की ज्योति बढ़ाता है। आलस्य को दूर करता है। विवेकशीलता आती है और मस्तिष्क का विकास होता है। मनुष्य में अच्छे कार्यों के प्रति जागरूकता होती है। दृढ संकल्प को बढ़ाने में सक्षम है।

5. नौली क्रिया – नौली के विषय में हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है–

अथ नौलि :।
अमन्दावर्तवेगेन तुन्दं सव्यापसव्यतः।
नतांसो भ्रामयेदेषा नौलिः सिद्धैः प्रचक्ष्यते।।33।।

अर्थात् नतांस अर्थात् कंधे झुकाएं है, ऐसा मनुष्य अत्यंत तीव्रता से दाहिनी और बाईं और से अपने उदर को घुमाए सिद्ध योगियों के द्वारा यह नौली क्रिया कहलाती है। नौली क्रिया में पेट की आंतरिक मांसपेशियों को घुमाया जाता है जिससे वह मजबूत होती हैं। पैरों के बीच कुछ फासला देते हुए आगे की तरफ थोड़ा झुक कर खड़े हो जाएंगे। घुटने थोड़े मुड़े हुए रहेंगे अब दोनों हाथों के पंजों को घुटनों पर रखकर गहरी श्वास लेंगे और श्वास को बाहर निकाल देंगे। पेट को अंदर की तरफ खेंचते हुए उड्डियान बंध लगाएंगे और मध्य नालों को ढीला छोड़ते हुए बाहर की तरफ निकालेंगे। पेट को हिलाएंगे। इस क्रिया के द्वारा पेट का संपूर्ण व्यायाम हो जाता है और पेट के सारे आंतरिक अंग मजबूत होते हैं।

6. कपालभाति क्रिया –
भस्त्रावल्लोहकारस्य रेचपूरौ ससंभ्रमौ।
कपालभातिर्विख्याता कफदोषविशोषणी।।35।।

अर्थात् लौहार की धौंकनी के समान आवाज करते हुए संपूर्ण श्वास को बाहर निकालने की क्रिया कपालभाति है। यह कफ दोष का शोषण करने वाली है।

कपाल का अर्थ होता है ललाट और भांति का अर्थ है, तेज। यह क्रिया करने से हमारे ललाट पर तेज उत्पन्न होता है। त्वचा भी कांतिमय होती है। सर्वप्रथम पद्मासन में बैठकर चिनमुद्रा लगा ले। श्वास को बाहर निकालते जांए श्वास बाहर निकलेगा और पेट अंदर जाएगा इस बात का ध्यान रखें। यही क्रिया लगातार 2 से 3 मिनट करें फिर विश्राम लेने के पश्चात् पुनः शुरू करें। कफ से उत्पन्न होने वाली सभी प्रकार की समस्याओं का हल कपालभाति के द्वारा होता है। फेफडे, मस्तिष्क और आमाशय की शुद्धि होती है। पाचन शक्ति मजबूत होती है रक्त शुद्ध होता है यह मानसिक शांति को देने वाली क्रिया है।

षट क्रियाओं में सावधानियां – शुरू में षट् क्रियाओं का अभ्यास करते समय और उसके पहले कुछ विशेष सावधानियां रखना आवश्यक हो जाता है अन्यथा इनका गलत अभ्यास हानि पहुंचा सकता है –

- यह क्रियाएं खाली पेट ही की जानी चाहिए।
- सुबह–सुबह का समय उपयुक्त होता है
- किसी भी योग्य प्रशिक्षक के सानिध्य में ही करें। सर्वप्रथम स्वयं को अकेले अभ्यास नहीं करना है। किसी भी प्रकार का रोग होने पर किसी योग चिकित्सक से परामर्श लें उसके बाद ही करें।
- कोई भी सर्जरी होने पर ना करें अपने बारे में पूरी जानकारी अपने योग चिकित्सक को दें।
- धौती, वस्ती और नौली की क्रिया करने के एक दिन पहले भी रात्रि को कुछ हल्का आहार जैसे पतला दलिया लें। क्रिया करने के बाद भी कोई हल्का आहार पतला दलिया या मूंग की खिचड़ी ही लें।
- क्रियाएं करते समय पानी बिल्कुल साफ हो इसका पूरा ध्यान रखें।
- पानी बहुत ज्यादा गर्म भी नहीं होना चाहिए और ठंडा भी नहीं गुनगुना पानी ही होना चाहिए। त्राटक करते समय भी विशेष ध्यान रखें की आंखों से संबंधित कोई बड़ा रोग ना हो।
- गर्भावस्था में षटकर्म का अभ्यास नहीं करना चाहिए।

शंख प्रक्षालन (एक सम्पर्ण आंतरिक शुद्धि प्रकिया)– शंख प्रक्षालन एक प्राचीन यौगिक प्रकिया है जिसे शरीर की आंतरिक सफाई के लिए किया जाता है। यह विशेष रूप से पाचन तंत्र को शुद्ध करने, विषाक्त पदार्थों को निकालने और संपूर्ण स्वास्थ्य को बढ़ाने में सहायक होती है। इस विधि का वर्णन हठयोग प्रदीपिका और अन्य योग ग्रंथों में मिलता हैं। इसमें गुनगुने पानी में सेंधा नमक मिलाकर उसे एक विशेष विधि से पिया जाता है और फिर कुछ विशेष आसनों का अभ्यास किया जाता हैं, जिससे पानी पूरे पाचन तंत्र से गुजरते हुए मल द्वार से बाहर निकलता है। यह प्रक्रिया तब तक दोहराई जाती हैं जब तक पानी पूरी तरह से साफ होकर बाहर न आने लगे।

शंख प्रक्षालन करने की विधि – एक गिलास गुनगुना पानी लें और उसमें थोड़ा सेंधा नमक मिलाएँ। इस पानी को धीरे–धीरे पिएँ।

सर्वप्रथम ताड़ासन करें अर्थात् शरीर को सीधा रखकर खड़े रहें और हाथों को ऊपर उठाएँ। इसके पश्चात् कटिचक्रासन करें और शरीर को दोनों दिशाओं में मोड़ें फिर भुजंगासन के द्वारा पेट के बल लेटकर शरीर को ऊपर उठाएँ और अंत में उदराकर्षणासन के द्वारा घुटनों को मोड़ते हुए शरीर को घुमाएँ तत्पश्चात् पवनमुक्तासन में आते हुए पीठ के बल लेटकर घुटनों को पेट से सटाएँ। यही प्रक्रिया दोहराएँ, 2–3 गिलास पानी पिएँ और पुनः आसन करें। यह चक्र तब तक दोहराएँ जब तक पानी पुरी तरह साफ होकर बाहर न आने लगे। मल के द्वारा उसका पूरी तरह निष्कासित कर दें। इस प्रक्रिया के बाद कुछ समय आराम करें और 2 से 3 घंटे के बाद हल्का भोजन लें।

शंख प्रक्षालन के लाभ –यह प्रक्रिया पूरे आंतरिक पथ को साफ करती है, जिससे पाचन संबंधी समस्याएँ जैसे कब्ज, गैस और एसिडिटी दूर होती हैं। इसके अभ्यास से शरीर से विषैले पदार्थ बाहर निकल जाते हैं, जिससे शारीरिक और मानसिक ताजगी मिलती है। वजन घटाने में सहायक यह प्रक्रिया मेटाबोलिज्म को बढ़ाने में मदद करती है, जिससे वजन कम करने में सहायता मिलती है। आंतरिक सफाई से त्वचा में प्राकृतिक चमक आती है। पाचन तंत्र ठीक रहने से माइग्रेन और सिरदर्द की समस्या कम होती है। यह क्रिया आंतों की कार्यक्षमता को सुधारती है और भोजन के अवशोषण को बेहतर बनाती है।

सावधानियां – एक दिन पहले रात्रि को हल्का भोजन दलिया या पतली खिचड़ी लें। उच्च रक्तचाप, हृदय रोग, अल्सर या गंभीर गैस्ट्रिक समस्या वाले व्यक्ति ना करें। गर्भवती महिलाएँ ना करें। किसी भी प्रकार की सर्जरी से गुजरे हुए व्यक्ति इसका अभ्यास ना करें। शंख प्रक्षालन करने के पश्चात भी हल्का आहार लें। किसी योग शिक्षक की देखरेख में करना ही उचित होता है।

प्राणायाम - श्वासों का एक अदभुत विज्ञान

प्राणायाम योग का एक महत्वपूर्ण अंग है, जो शरीर, मन और आत्मा के बीच संतुलन स्थापित करता है। प्राणायाम, शब्द संस्कृत के प्राण और आयाम से मिलकर बना है। प्राण का अर्थ है जीवन शक्ति या ऊर्जा, जो हमारे शरीर और मन को जीवित और सक्रिय बनाए रखती है। आयाम का अर्थ है विस्तार या नियंत्रण। इस प्रकार, प्राणायाम का अर्थ होता है – प्राण, जीवन ऊर्जा का नियंत्रण और उसका विस्तार। इसमें श्वास लेने, रोकने और छोड़ने की विशेष क्रियायें शामिल होती है। प्राणायाम के द्वारा अपने प्राणों को बल देते हुए शारीरिक और मानसिक ऊर्जा को बढ़ाया जाता है। प्राण वह शक्ति है जो हमारे शरीर को जीवित रखते है। सुचारू रूप से श्वास लेकर और बाहर निकाल कर हमारी जीवनी शक्ति को मजबूत बनाया जा सकता है। श्वास अर्थात् श्वास लेना और प्रश्वास का अर्थ है, श्वास को बाहर निकालना। प्राणायाम करते समय तीन स्थितियों की तरफ ध्यान देना आवश्यक है।

1. **पूरक** – पूरक का अर्थ है श्वास भीतर लेना।
2. **रेचक** –रेचक का अर्थ है श्वास को बाहर निकालना।
3. **कुंभक** – कुंभक का अर्थ है श्वास को रोके रखना।

इन्हीं तीन क्रियाओं में तीन प्रकार की अवस्थाओं का अभ्यास किया जाता है। अभ्यांतर वृत्ति, स्तम्भ वृत्ति और बाहय् वृत्ति भी कहते है।

प्राणायाम की परिभाषा देते हुए महर्षि पतंजलि कहते हैं –

तस्मिन्स्तिश्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायाम :।।

अर्थात् आसन के सिद्ध होने पर श्वास प्रश्वास के प्रवाह का नियम ही प्राणायाम है। योग दर्शन में महर्षि पतंजलि ने चार प्रकार के प्राणायामों का वर्णन किया है।

बाहयाभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्म :।।
बाहयाभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः।।51।।

महर्षि पतंजलि द्वारा बताए गए प्राणायाम के चार प्रकारों को इस प्रकार समझा जा सकता है। प्रथम प्राणायाम है, बाहय वृत्ति प्राणायाम। श्वास को बाहर निकाल करके बाहर ही रोके रखना, जब तक की रोक सकें यह बाहय वृत्ति प्राणायाम है।

दूसरा प्राणायाम जो योग दर्शन में कहा गया है वह है, अभ्यंतर वृत्ति प्राणायाम। इसमें गहरी श्वास को अंदर लेकर अंदर ही रोके रखना होता है।

तीसरा प्राणायाम जो कहा गया है, वह है, स्तंभ वृत्ति। श्वास जहां पर है वहीं पर रोक देना अर्थात् यदि अंदर आ रहा है तो वहीं रोक देना और बाहर आ रहा है तो इसी समय वहीं पर रोक देना ही है, स्तंभ वृत्ति प्राणायाम।

महर्षि पतंजलि चौथे प्राणायाम के रूप में बाहय अभ्यतंर विषय प्राणायाम को बताते हैं। इस प्राणायाम के अंतर्गत जब श्वास बाहर जा रहा है तो उसके विपरीत बल लगाकर उसे भीतर धकेलने की कोशिश की जाती है और यदि अंदर जा रहा है तो उसके विपरीत उसे बाहर की तरफ धकेला जाता हैं।

हठयोग प्रदीपिका में प्राणायाम के मुख्य तीन अंग कहे गए है।

प्राणायामस्त्रिधा प्रोक्तो रेचपूरककुम्भकैः।
सहितः केवलश्चेति कुम्भको द्विविधो मत :।
यावत् केवलसिद्धिः स्यात् सहितं तावदभ्यसेत्।।71।।

अर्थात् – प्राणायाम के तीन मुख्य अंग होते हैं जिनसे प्राणायाम पूर्ण होता है। रेचक, (श्वास को बाहर निकालना) पूरक श्वास को अन्दर भरना व कुम्भक (श्वास को अन्दर या बाहर कहीं भी रोक कर

रखना)। इसमें कुम्भक के दो प्रकार होते है, एक सहित कुम्भक व दूसरा केवल कुम्भक। जब तक साधक को केवल कुम्भक में सिद्धि नहीं मिल जाती तब तक उसे सहित कुम्भक का अभ्यास भी करते रहना चाहिए। हठयोग प्रदीपिका में स्वामी स्वात्माराम जी ने आठ प्रकार के प्राणायाम बताए है।

सूर्यभेदनमुज्जायी सीत्कारी शीतली तथा।
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा प्लाविनीत्यष्टकुम्भका।।44।।

अर्थात् – सूर्यभेदी, उज्जायी, सीत्कारी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा व प्लाविनी ये आठ प्रकार के कुम्भक अर्थात् प्राणायाम कहे गए हैं। प्राणायाम करते समय बंध को स्वामी जी ने विशेष महत्व दिया है और कहा है –

पूरकान्ते तु कर्तव्यो बन्धो जालन्धराभिधः।
कुम्भकान्ते रेचकादौ कर्तव्यर्स्तूड्डियानक :।। 45।।

अर्थात – कुम्भक (प्राणायाम) करते समय गुदा का संकोच रूपी मूलबन्ध करने, गले का संकोच रूपी जालन्धर बन्ध करने व उदर का संकोच रूपी उड्डीयान बन्ध का अभ्यास करने से साधक का प्राण सीधा ब्रह्मनाड़ी अर्थात् सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश करता हैं

महर्षि घेरंड ने भी आठ प्रकार के प्राणायामों का वर्णन किया है –

सहित, सूर्यभेदी, उज्जायी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्छा व केवली यह आठ प्रकार के कुंभक प्राणायाम कहे गए हैं। सहित कुंभक दो प्रकार से किया जाता है, सगर्भ और निगर्भ।

सगर्भ कुंभक को बीज मंत्र के उच्चारण के साथ किया जाता है तथा निगर्भ में बीज मंत्र का उच्चारण नहीं होता है।

जीवन शक्ति के परिचायक चार बंध

बंध तीन प्रकार के होते हैं। जालंधर बंध, उड्डियान बंध और मूलबंध। जब इन तीनों ही बंधों का प्रयोग एक साथ किया जाता है तो वह महाबंध कहलाता है। इस प्रकार कई विद्वान बंध चार प्रकार के मानते हैं। महा का अर्थ होता है महान और बंध का अर्थ होता है

रोकना। इसमें शरीर की ऊर्जा को एक जगह रोके रखा जाता है अर्थात् उसका बंध लगा दिया जाता है ताकि वह ऊर्जा शरीर में स्थित रहकर लाभ पहुंचा सके।

जालंधर बंध – इसे करने के लिए सर्वप्रथम किसी भी ध्यानात्मक आसन में बैठ जाएं। ध्यान रहे रीढ़ की हड्डी बिल्कुल सीधी रहे और दोनों हाथ घुटनों के ऊपर रहेंगे। पूरक करें फिर कुंभक करते हुए गर्दन को नीचे करें और ठोड़ी को कंठ कूप में लगाएं। जितनी देर आसानी से रूक सकें रूके रहें फिर गर्दन को सीधा करते हुए रेचक करें। पूरक करते हुए जब श्वास को रोका जाता है तो वायु के बाहर आने का मार्ग बंद हो जाता है और यह शक्ति जब योगी के शरीर में एकत्रित होती है तो उसे मानसिक और शारीरिक रूप से बहुत बलवान बनाती है। इसके अभ्यास से फेफड़े बलशाली बनते हैं। थायराइड और टॉन्सिल तथा गले से संबंधित रोग दूर होते हैं।

उड्डियान बंध – इस बंध का अभ्यास करते समय सबसे पहले गहरी श्वास लें फिर उसे बाहर निकला दें। श्वास को वहीं रोके रखें अर्थात् कुंभक करें। पेट की मांसपेशियों को इतना सिकुड जाने दें की वह पीठ से जाकर लगने की स्थिति में आ जाए। क्षमता अनुसार रूकने के पश्चात् गहरी श्वास लेते हुए इस बंध को खोल दें। इसके अभ्यास से गैस, अपच और पेट से संबंधित रोग दूर होते है, आंते मजबूत होती है। गुर्दे, लीवर और पाचन संस्थान से संबंधित परेशानियां दूर होती है।

मूलबंध – किसी भी ध्यानात्मक आसन में बिल्कुल सीधा बैठकर पूरक करें तत्पश्चात् रेचक करें और फिर बाह्य कुंभक करते हुए अपने गुदा प्रदेश को और योनी स्थान को जितना हो सके उतना संकुचित करें और ऊपर की तरफ खेंचने का प्रयत्न करें। यथाशक्ति रूकते हुए बाह्य कुंभक खोल दें और पुनः पूरक करें। इसके अभ्यास से मूत्राशय और यौन संबंधी सभी रोग दूर होते है। बवासीर जैसे रोगों में फायदा देता है।

जब इन तीनों ही बंधों का एक साथ अभ्यास किया जाता है तो उसे महाबंध कहा जाता है। महाबंध में श्वास को बाहर निकाल कर बाहर

ही रोके रखना होता है। जालंधर बंध और मूल बंध तो श्वास अंदर होने की स्थिति में भी लगा सकते है परंतु उड्डियान बंध श्वास को बाहर निकाल कर ही लगाया जाता है। इस बात का विशेष ध्यान रखें।

महाबंध लगाते समय विशेष ध्यान यह भी रखना होता है कि दोनों हाथ दृढता से घुटनों के ऊपर रहेंगे। महाबंध प्राण की सिद्धि प्राप्त कराने वाला होता है। इसके अभ्यास से प्राण हमारे वश में हो जाते है। महाबंध के अभ्यास से रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है। शरीर में स्थित हमारे सातों ही चक्र सक्रिय होते है।

प्राणायाम के विभिन्न प्रकार –

1. **सूर्यभेदी प्राणायाम –** सूर्य नाडी जो हमारी दायीं नासिका कही गई है, इसे पिंगला भी कहते हैं। इस प्राणायाम में इसी का भेदन करना होता है।

   विधि – सबसे पहले आसन पर पद्मासन में या किसी भी ध्यानात्मक आसन में बैठेंगे। गर्दन, कमर, कंधे बिल्कुल सीधे रहेंगे। दाएं हाथ से नासाग्र मुद्रा लगाएंगे। दायीं नासिका से गहरी श्वास लेंगे जितनी देर हो सके श्वास को रोके रखेंगे अर्थात् कुंभक लगाएंगे फिर धीरे–धीरे बायीं नासिका से श्वास को बाहर निकाल देंगे। इसे यथाशक्ति पुनः पुनः करना चाहिए।

   लाभ – यह मस्तिष्क के सभी विकारों को दूर करता है। फेफड़े मजबूत होते हैं श्वास संबंधी विकृतियां दूर होती है शरीर में हल्कापन और स्फूर्ति का अनुभव होता है। कफ रोगी के लिए यह उपयोगी होता है जिनको अस्थमा रहता है उन्हें भी इसका अभ्यास करना चाहिए। जिनको लगातार सर्दी जुकाम बनी हुई रहती है, एलर्जी रहती है उन्हें भी इसका अभ्यास करना चाहिए।

   सावधानियां– विशेष ध्यान रखना है कि हृदय विकार जिनको है उन्हें यह प्राणायाम नहीं करना है जिनको उच्च रक्तचार की परेशानी है उन्हें भी यह नहीं करना है। यह प्राणायाम करते

समय श्वासो की आवाज नहीं आनी चाहिए। गर्मी के मौसम में इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।

2. **उज्जाई प्राणायाम** – विशुद्धि चक्र को सक्रिय करने के लिए उज्जाई सबसे अच्छा प्राणायाम है।

   विधि – किसी भी ध्यानात्मक आसन में बैठ जाएंगे। गर्दन, कमर, कंधे बिल्कुल एक सीध में रहेंगे। गहरी श्वास लेंगे जब हम गहरी श्वास लेंगे तो हमारे गले में आवाज आएगी और गर्दन की मांसपेशियां खींचेंगी। जालंधर बंध लगाएंगे और श्वास को रोके रखेंगे। गर्दन को सीधा करके दाई नासिका को बंद करके बायीं नासिका से श्वास को बाहर निकाल देंगे। यही क्रिया तीन बार दोहराएंगे।

   लाभ – थायराइड और पैराथायराइड ग्रंथियों से संबंधित परेशानियां दूर होती हैं। जिनको हकलाने की बीमारी है उन्हें यह प्राणायाम करना ही चाहिए। इस प्राणायाम को करते समय विशेष सावधानी रखनी चाहिए कि जिनके भी गले की किसी भी प्रकार की सर्जरी हुई है उन्हं यह प्राणायाम नहीं करना है।

3. **सीत्कारी प्राणायाम** – इस प्राणायाम में जिव्हा के द्वारा सीत्कार करते हुए पूरक किया जाता है।

   विधि – किसी भी ध्यानात्मक आसन में बैठेंगे। दोनों दांतो की पंक्तियों को एक दूसरे के ऊपर रखते हुए बाहर से श्वास इस प्रकार भरेंगे की दांतों से ही श्वास भीतर जाए और फिर दोनों नासिकाओं से श्वास को बाहर निकाल देंगे।

   लाभ – दांतों को मजबूत बनाता है और उनसे संबंधित परेशानियों को दूर करता है। त्वचा को कांतिमय बनाता है। सौंदर्य को बढ़ाता है जिन्हें बहुत ज्यादा गर्मी लगती है उनके लिए बहुत लाभदायक है जिनको उच्च रक्तचाप की समस्यां है उन्हें करना ही चाहिए।

   सावधानियां – जिन्हें ठंड से संबंधित रोग है उन्हें यह नहीं करना चाहिए। निम्न रक्तचाप वालों को नहीं करना चाहिए।

4. **शीतली प्राणायाम** – यह प्राणायाम भी गर्मियों में ही करना चाहिए क्योंकि यह शरीर में ठंडक लेकर आता है।

विधि – सर्वप्रथम किसी भी ध्यानात्मक आसन में बैठेंगे

अपने दोनों होठों को सिकोड़ते हुए जिव्हा को इस तरह बाहर निकालेंगे की मानो उसका पाइप बना हुआ है। जिव्हा पक्षी की चोंच के समान दिखाई देगी। मुंह से ही गहरी श्वास लेंगे जो जिव्हा में से होती हुई भीतर जाएगी। धीरे–धीरे दोनों नासिकाओं से श्वास को बाहर निकाल देंगे।

लाभ – पित्त विकार को दूर करता है । उच्च रक्तचाप को दूर करता है। प्यास, भूख,गर्मी को शांत करता है। त्वचा को कांतिमय बनाता है।

सावधानियां –निम्न रक्तचाप वालों को नहीं करना है।

जिन्हें ठंड से संबंधित रोग है उन्हें नहीं करना है।

भस्त्रिका प्राणायाम –इस प्राणायाम को करने से लौहार की धौंकनी के समान आवाज आती है।

विधि –किसी भी ध्यानात्मक आसन में बैठ जाएंगे गहरी श्वास लेंगे और बाहर निकलेंगे। यह क्रिया करते समय श्वास की आवाज आएगी।

लाभ – श्वसन तंत्र को ऊर्जा प्रदान करता है। फेफड़ों की सफाई कर उन्हें मजबूत बनाता है तथा

रक्त को शुद्ध करता है।

सावधानियां –इस प्राणायाम का अभ्यास बहुत तेजी के साथ नहीं करना चाहिए। उच्च रक्तचाप वालों को भी नहीं करना चाहिए। जिन्हें नकसीर की शिकायत रहती है उन्हें नहीं करना चाहिए। जो व्यक्ति शारीरिक रूप से कमजोर है या किसी रोग से उठे हैं उन्हें नहीं करना चाहिए।

मूर्छा प्राणायाम – इस प्राणायाम के अभ्यास द्वारा मन को मूर्छित करने की स्थिति तक लाया जाता है।

विधि – सर्वप्रथम आसन पर बिल्कुल सीधे बैठ जाएंगे दोनों नासिकाओं से दीर्घ परंतु धीरे–धीरे श्वास लेंगे श्वास को वहीं रोके रखते हुए जालंधर बंध लगाएंगे। इसी स्थिति में रहते हुए अंगूठे के पास वाली दोनों उंगलियों तर्जनी और मध्यमा से आंखों की नीचे की ओर पलकों को बंद करेंगे अनामिका अंगुली से नाक के दोनों नथुने दबाकर रखेंगे और कनिष्ठिका से मुख के नीचे वाले होंठ को दबाकर रखेंगे। श्वास को रोक कर मूल बंध और उड्डियान बंध लगाएंगे। जब असह्य स्थित होने लगेगी तो धीरे–धीरे पूर्ववत स्थिति में आकर रेचक करेंगे अर्थात् श्वास को बाहर निकालेंगे। यह करने से मूर्छा के समान स्थिति हो जाती है।

लाभ – मन की चंचलता को दूर करके एकाग्रता को बढ़ाता है। मानसिक शांति प्रदान करता है। तनाव और उद्वैग की स्थिति को शांत करता है। वीर्य रक्षा करता है। जठराग्नि प्रदिप्त करता है। पाचन संबंधी विकारों को दूर करता है।

सावधानियां – जिन्हें हृदय से संबंधित रोग हैं उन्हें नहीं करना है। उच्च रक्तचाप वालों को नहीं करना है। जिनके शरीर में ज्यादा गर्मी रहती है उन्हें नहीं करना है। जो शारीरिक रूप से दुर्बल है उन्हें नहीं करना है। किसी भी अच्छे योग गुरु के सानिध्य में रहकर ही करना है।

प्लावनी प्राणायाम – इस प्राणायाम के निरंतर अभ्यास से योगी कभी भी पानी में डूबता नहीं है वह सुखपूर्वक सीधा लेटा हुआ तैरता रहता है।

विधि – सर्वप्रथम पद्मासन या सुखासन में बैठें। गहरी श्वास लें और अधिक से अधिक वायु को अंदर भरें और पेट को फुला लें, जितनी देर रुका जा सके उतनी देर उसे रोकने की कोशिश करें।

फिर धीरे–धीरे वायु को बाहर निकाल कर अपने पेट को पूरा खाली कर दें।

लाभ – इसके अभ्यास से शरीर बिल्कुल हल्का हो जाता है। पाचन से संबंधित सभी रोग दूर होते हैं।

सावधानियां – हृदय से संबंधित रोगों में यह नहीं करना है।

कपालभाति प्राणायाम – कपालभाति को षट् क्रियायों में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। इसी कारण यह एक भ्रांति का विषय बना हुआ है कि इसे प्राणायाम मानें या क्रिया । कुछ व्यक्ति इसे प्राणायाम मानते हैं और कुछ क्रिया परंतु दोनों ही धारणाएं सही हैं। कई विद्वानों ने इसे करने के अलग–अलग तरीके बताएं हैं।

हठयोग के अनुसार कपालभाति एक षटकर्म का अंग है। हठयोग प्रदीपिका में कपालभाति के विषय में कहा गया है–

भस्त्रावल्लोहकारस्य रेचपूरौ ससंभ्रमौ ।
कपालभातिर्विख्याता कफदोषविशोषणी ।। 36 ।।

अर्थात् :–लौहार की धौकनी की तरह श्वास को तेज गति के साथ आवाज करते हुए अन्दर व बाहर करना कपालभाति कहलाता है । इसके अभ्यास से सभी प्रकार के कफ दोष नष्ट हो जाते हैं।

घेरण्ड संहिता में कपालभाति के तीन प्रकार वातक्रम, व्युत्क्रम व शीतक्रम बताए हैं ।

वर्तमान युग में कपालभाति को एक महत्वपूर्ण प्राणायाम बताया है और कई साधकों ने इसका अभ्यास करके कई लाभ भी प्राप्त किये हैं ।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में कपालभाति सुखासन या पद्मासन में बिल्कुल सीधे होकर बैठ जाएं। चिन्मुद्रा लगा लें। श्वास के ऊपर ध्यान देते हुए श्वास बाहर की ओर निकालें और पेट को अंदर की ओर ले जाएं। अर्थात श्वास बाहर पेट अंदर इस क्रिया के ऊपर ध्यान देते हुए लगातार करते जाएं ।

कपालभाती से पाचन तंत्र मजबूत होता है। पेट से संबंधित कई दोषों का निवारण होता है। रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है और रक्त संचरण सुचारू होता है। हर्निया होने पर कपालभाति नहीं करना

चाहिए और किसी प्रकार की कोई पेट की सर्जरी होने पर यह नहीं करना चाहिए।

नाडी शोधन प्राणायाम – योग शास्त्र के अनुसार शरीर में बहत्तर हजार नाडियां हैं । इन्हें ऊर्जावान और शुद्ध तथा बलवान बनाए रखने के लिए नाडी शोधन प्राणायाम एक उत्तम उपाय है।

नाडी" का अर्थ है ऊर्जा के मार्ग, और "शोधन" का अर्थ है शुद्ध करना। इस प्रकार, नाडी शोधन प्राणायाम का उद्देश्य शरीर की ऊर्जा धाराओं को शुद्ध करना और उन्हें संतुलित करना है।

हठयोगी प्रदीपिका में नाडी की शुद्धि की आवश्यकता के विषय में कहा गया है–

मलाकुलासु नाड़ीषु मारुतो नैव मध्यगः ।
कथं स्यादुन्मनीभावः कार्यसिद्धिः कथं भवेत् ।।

अर्थात् जब तक हमारी नाड़ियो में मल भरे होंगे तब तक प्राणवायु, सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश नहीं कर सकती । और जब तक प्राणवायु सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश नहीं करेगी तब तक उन्मनी भाव अर्थात् समाधि की प्राप्ति नहीं होगी और मोक्ष रूपी कार्य कैसे सिद्ध होंगे?

नाडी शोधन की विधि बताते हुए हठयोगी प्रदीपिका में कहा गया है–

बद्ध पद्मासनो योगी प्राणं चन्द्रेण पूरयेत् ।
धारयित्वा यथाशक्ति भूयः सूर्येण रेचयेत् ।। 7 ।।
प्राणं सूर्येण चाकृष्य पूरयेदुदरं शनैः ।
विधिवत् कुम्भकं कृत्वा पुनश्चन्द्रेण रेचयेत् ।। 8 ।।
येन त्यजेत्तेन पीत्वा धारयेदनिरोधतः ।
रेचयेच्च ततोऽन्येन शनैरेव न वेगतः ।। 9 ।।

अर्थात् योगी को पद्मासन में बैठकर पहले बायीं नासिका से प्राणवायु को अन्दर भरकर उसे अपनी सामर्थ्य शक्ति के अनुसार अन्दर ही रोकना चाहिए । इसके बाद उस प्राणवायु को दायीं नासिका से बाहर निकाल दें । फिर प्राणवायु को धीरे– धीरे अपनी

दायीं नासिका से शरीर के अन्दर पेट तक भर लेना चाहिए । उसके बाद विधिवत रूप से उसे अन्दर रोकते हुए पुनः बायीं नासिका से प्राणवायु को बाहर निकाल दें । इस प्रकार जिस नासिका से श्वास को बाहर निकाला हो उसी से श्वास को अन्दर भरें और उसे तब तक अन्दर ही रोके रखें जब तक की बाहर छोड़ने की इच्छा न हो जाए । साथ ही दूसरी नासिका से श्वास को धीरे–धीरे बाहर छोड़ें, कभी भी जल्दबाजी न करें ।

महर्षि घेरण्ड ने नाड़ी शुद्धि को महत्वपूर्ण माना है।

नाड़ीशुद्धिर्द्विधा प्रोक्ता समनुर्निर्मनुस्तथा ।
बीजेन समनुं कुर्यान्निर्मनुं धौतिकर्मणा ।। 35 ।।

नाड़ी शुद्धि की प्रक्रिया दो प्रकार से की जाती है । एक समनु तथा दूसरी निर्मनु । नाड़ी शुद्धि का अभ्यास बीजमन्त्र के साथ करने को समनु कहते हैं और बिना मन्त्र के अर्थात् धौतिकर्म के द्वारा करने को निर्मनु कहते हैं ।

नाड़ी शुद्धि की विधि–
वायुबीजं ततो ध्यात्वा धूम्रवर्णं सतेजसम् ।
चन्द्रेण पूरयेद्वायुं बीजं षोडशकैः सुधीः ।। 38 ।।
चतुःषष्टया मात्रया च कुम्भकेनैव धारयेत् ।
द्वात्रिंशन्मात्रया वायुं सूर्यनाड्या च रेचयेत् ।। 39 ।।

बुद्धिमान साधक को चाहिए कि वह धुएँ के जैसे रंग वाले तेजयुक्त वायु के बीजमन्त्र अर्थात् 'यँ' का ध्यान करते हुए अपनी चन्द्रनाड़ी से सोलह बीजमंत्रो का जाप करते हुए प्राण को शरीर के अन्दर भरें

इसके बाद उस अन्दर भरी हुई प्राणवायु को चौंसठ बीजमंत्रों का जाप करते हुए शरीर के अन्दर ही रोके रखें और अन्त में बत्तीस बीजमंत्रों का जाप करते हुए उस प्राणवायु को सूर्यनाड़ी से बाहर निकाल दें ।

नाडी शोधन की प्रचलित विधि – सुखासन या पद्मासन में बिल्कुल सीधे बैठ जाएं। दाहिने हाथ से नासाग्र मुद्रा बना लें। दाएं हाथ के

अंगूठे से ही दाईं नासिका को बंद करें बायीं नासिका से गहरी श्वास लें। दो से तीन सेकंड रुके रहने के बाद दाईं नासिका से गहरी श्वास बाहर निकाल दें। पुनः दायीं नासिका से ही गहरी श्वास लें और बाईं से बाहर निकालें और यही क्रिया दोहराते जाएं।

यह प्राणायाम शारीरिक और मानसिक शुद्धि का माध्यम है। यह मन को शांत करता है और ध्यान के लिए अनुकूल वातावरण बनाता है। यह तनाव को कम करता है और मस्तिष्क की कार्यक्षमता बढ़ाता है। फेफड़ों की क्षमता बढ़ाने और श्वसन तंत्र को मजबूत करने में सहायक है। यह शरीर के अंदर प्राण ऊर्जा के संतुलन को बनाए रखता है।

प्राणायाम का महत्व

प्राणायाम के अभ्यास से फेफड़ों की क्षमता बढ़ती है। हृदय स्वास्थ्य बेहतर होता है। पाचन तंत्र को मजबूत करता है। तनाव और चिंता को कम करता है। ध्यान और स्मरणशक्ति को बढ़ाता है। आत्म–जागरूकता बढ़ती है। आंतरिक शांति और संतुलन प्राप्त होता है। रक्त प्रवाह सुचारू होता है, एकाग्रता बढती है और मस्तिष्क शांत होता है।

प्राणायाम करते समय सावधानियां– खाली पेट प्राणायाम करें। एक शांत और स्वच्छ स्थान का चयन करें। सही विधि और समय का पालन करें। यदि कोई स्वास्थ्य समस्या हो, तो विशेषज्ञ से सलाह लें। प्राणायाम का नियमित अभ्यास हमारे जीवन में सकारात्मक बदलाव ला सकता है। यह केवल शारीरिक अभ्यास नहीं है, बल्कि एक आंतरिक शुद्धिकरण की प्रक्रिया है। अगर इसे सही तरीके से किया जाए, तो यह हमारी ऊर्जा को बढ़ाता है और जीवन की गुणवत्ता में सुधार करता है। प्राणायाम का अभ्यास शुरू में योग गुरू के सानिध्य में ही करें। इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्राणायाम योग का ऐसा साधन है, जो न केवल हमारे शारीरिक स्वास्थ्य को बेहतर बनाता है, बल्कि मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति का भी मार्ग प्रशस्त करता है। आधुनिक जीवन के तनावपूर्ण माहौल में, प्राणायाम का अभ्यास हमारे जीवन को अधिक संतुलित और आनंदमय बना सकता है।

आसन

स्थिरसुखमासनम् –

महर्षि पतंजलि ने आसन की परिभाषा देते हुए कहा है– स्थिरसुखमासनम् अर्थात् बैठने की ऐसी अवस्था जिसमें स्थिर होकर सुख पूर्वक बैठा जा सके वही आसन है। यह अष्टांग योग का एक महत्वपूर्ण अंग है। महर्षि पतंजलि ने आसनों के कोई प्रकार नहीं बताए हैं।

घेरंड संहिता में महर्षि घेरंड ने 32 प्रकार के आसन बताएं हैं। आसन के विषय में महर्षि कहते हैं–

आसनानि समस्तानि यावन्तो जीवजन्तवः ।
चतुरशीतिलक्षाणि शिवेन कथितानि च ।। 1 ।।
तेषां मध्ये विशिष्टानि षोडशोनं शतं कृतम् ।
तेषां मध्ये मर्त्यलोके द्वात्रिंशदासनं शुभम् ।। 2 ।।

अर्थात् इस पृथ्वी पर जितने भी जीव जंतु हैं आसनों की संख्या भी उतनी ही मानी गई है। प्राचीन काल में भगवान शिव ने उनमें से चौरासी लाख आसनों को माना है। उसके बाद मध्यकाल में चौरासी सौ आसनों को प्रमुख माना गया था । जिनमें से मृत्युलोक में मात्र बत्तीस आसनों को ही मनुष्य के लिए शुभ अर्थात् कल्याणकारी माना गया है ।

सिद्धं पद्मं तथा भद्रं मुक्तं वज्रञ्च स्वस्तिकम् ।
सिंहञ्च गोमुखं वीरं धनुरासनमेव च ।। 3 ।।
मृतं गुप्तं तथा मत्स्यं मत्स्येन्द्रासनमेव च ।
गोरक्षं पश्चिमोत्तानंमुत्कटं संकटं तथा ।। 4 ।।
मयूरं कुक्कुटं कुर्मं तथाचोत्तानकूर्मकम् ।
उत्तान मण्डूकं वृक्षं मण्डूकं गरुडं वृषम् ।। 5 ।।

शलभं मकरं चोष्ट्रं भुजङ्गयोगासनम् ।
द्वात्रिंशदासनान्येव मर्त्ये सिद्धिप्रदानि च ।। 6 ।।

अर्थात् इस मृत्युलोक में वर्तमान समय में बत्तीस आसन ही मनुष्य को सिद्धि प्राप्त करवाने वाले हैं ।

हठयोगी प्रदीपिका में 84 आसनों का वर्णन मिलता है जिनमें से 32 आसन घेरंड संहिता के ही हैं।

वर्तमान समय में आसनों को तीन भागों में बांटा गया है।

ध्यानात्मक आसन – ये वे आसन हैं जो प्राणायाम और ध्यान करते समय प्रयोग में लिए जाते हैं, जैसे सुखासन, पद्मासन, सिद्धासन।

सुखात्मक आसन– यह वे आसन होते हैं जो योग के अंत में शरीर को पूरी तरह आराम देने के लिए किए जाते हैं, जैसे, बालासन, शवासन।

संवर्धनात्मक आसन – यह वे आसन होते हैं जो शरीर को मजबूत लचीला बनाने के लिए किए जाते हैं यह चार प्रकार के होते हैं।

1. खड़े होकर किए जाने वाले आसन जैसे गरुड़ासन, वृक्षासन इत्यादि
2. बैठकर किए जाने वाले आसन जैसे गौमुखासन , पश्चिमोत्तानासन, अर्ध मत्स्येंद्रासन इत्यादि।
3. पीठ के बल पर लेटकर किए जाने वाले आसन जैसे सर्वांगासन, सेतुबंधासन इत्यादि।
4. पेट के बल पर लेट कर किए जाने वाले आसन जैसे नौकासन, भुजंगासन इत्यादि।

कुछ महत्वपूर्ण आसनों का वर्णन इस प्रकार है।

(1)सुखासन – सुखासन योग का एक प्रमुख आसन है जो ध्यान और शांति को प्राप्त करने में मदद करता है। इसे सुखासन इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसमे बैठे हुए आराम की स्थिति को प्राप्त किया जा सकता है। आसान भाषा में कहा जाए तो हम नित्य

प्रतिदिन जब नीचे बैठते हैं, आलथी–पालथी लगाकर, वही अवस्था सुखासन की होती है।

सुखासन करने की विधि– एक आसन पर बैठें। आसन को किसी स्थिर और समतल सतह पर करें। अपने घुटनों को समभाव में रखें और जमीन पर स्थिर रहें। अपने पैरों को आपस में मिलाएं और पैरों के तलवे को जमीन पर स्थित करें। अपने हाथों को पैरों के सामने सीधे रखें। गहरी श्वास लें, और अपने मन को शांत करें। ध्यान और शांति की भावना में 5–10 मिनट तक बैठें।

सुखासन के लाभ – मानसिक चिंता को कम करने में मदद करता है। ध्यान को बढ़ावा देता है और मन को शांत करता है। निद्रा को सुधारता है और तनाव को कम करता है। पेट के रोगों को कम करता है और पाचन को सुधारता है। सुखासन को नियमित रूप से अपनाकर अपने शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को सुधार सकते हैं।

(2)पद्मासन – चार महत्वपूर्ण आसन जो ध्यान और प्राणायाम के लिए कहे गए हैं उन्हीं में से एक है, पद्मासन।

पद्मासन की विधि – पहले, एक साफ़ समतल जगह पर आसन के ऊपर सुखासन (पालथी मारकर) में बैठ जाएं। ध्यान रखें कि आसपास का वातावरण बिल्कुल शांत हो। अपने दाहिने पैर को बाएं पैर की जंघा के ऊपर लाकर रखें और बाएं पैर को दाहिनी जंघा पर लाकर रखें। दोनों पैरों को एक साथ मिलाएं और उन्हें पेट के पास बांध लें। अपने हाथों को घुटनों के ऊपर लाकर रखें और ज्ञान मुद्रा लगा लें । प्राणायाम या ध्यान के लिए स्थिर हो जाएं। ध्यान रहे कि आपके गर्दन, कंधे और कमर बिल्कुल सीधे रहेंगे। इस आसन को 2 मिनट के अभ्यास से शुरू करके धीरे–धीरे आधा से 1 घंटे तक भी लगाया जा सकता है।

पद्मासन ध्यान में स्थिरता को बढ़ाता है। पद्मासन करने से मानसिक चिंता कम होती है और आत्मिक शांति मिलती है। इस आसन से पेट की समस्याओं का समाधान होता है। इस आसन के लगातार अभ्यास से मेधाशक्ति का विकास होता है। पाचन शक्ति बढ़ती है स्नायु मजबूत होते हैं, आंतों के रोग दूर होते हैं और दृष्टि

दोष को दूर करने में सक्षम है। घुटनों या जोड़ों मैं दर्द से संबंधित किसी भी प्रकार की समस्या मैं यह आसन नहीं करना चाहिए।

(3)बद्ध पद्मासन –यह एक विशेष प्रकार की योग मुद्रा है जो तनाव को दूर कर एकाग्रता को बढ़ाती है। यह प्राण शक्ति को बढ़ाने में भी सहायक है।

विधि– सर्वप्रथम पद्मासन में बैठ जाएं। दोनों हाथों को कमर के पीछे से इस प्रकार लेकर जाएं की दाएं हाथ से दाएं पैर का अंगूठा और बाएं हाथ से बाएं पैर का अंगूठा पकड़ में आ जाए। अंगूठा पकड़ने के लिए थोड़ा आगे की तरफ झुकें और पुनः अपने गर्दन और कमर को बिल्कुल सीधा करें। पूरा ध्यान अपनी श्वासों के ऊपर लगाएं।

7 से 10 सेकंड इसी अवस्था में रुके रहें और धीरे–धीरे अभ्यास पूर्वक इसका समय बढ़ाएं।

लाभ –इससे आंतों के रोग दूर होते हैं। जिनको खट्टी डकारें आती हैं, उन्हें यह आसन करना ही चाहिए। इस आसन के अभ्यास से हृदय और यकृत को बल मिलता है।

(4)सिद्धासन –सिद्धासन हमारे चेतन तत्व को जागृत करने वाला एक महत्वपूर्ण आसन है। यह सिद्धि को प्रदान करने वाला है। यह भी एक ध्यानात्मक आसन है और इससे मानसिक स्थिरता को

बढ़ाया जाता है। जब यह सिद्ध होता है तो एकाग्रता की अंतिम अवस्था तक पहुंचाने वाला होता है।

आसन पर सुखासन में बैठ जाएं। बाएं पैर को घुटने से मोड़कर इस प्रकार रखें कि उसकी एडी शिशन के ऊपर रहे। फिर दाएं पैर को घुटने से मोड़कर इस प्रकार रखें कि दाएं पैर की एडी भी बाएं पैर से मिली रहे। इससे 10 सेकंड से शुरू करके एक घंटे तक किया जा सकता है। मुख्यतः यह सिद्ध महात्मा पुरुषों का आसन है जो प्राण तत्व को बल देता है।

सिद्धासन के लाभ– यह आसनों में श्रेष्ठ आसन कहा गया है। ब्रह्मचर्य की और प्रवृत्त करता है। मन को एकाग्र और विचारों को पवित्र बनाने में सहायक सिद्ध होता है। पाचन शक्ति को मजबूत बनाता है । रक्त प्रवाह को नियमित करता है और स्वास्थ्य के ऊपर पूर्ण नियंत्रण प्रदान करता है।

(5)स्वस्तिकासन –यह एक महत्वपूर्ण ध्यानात्मक आसन है। स्वयं भगवान शिव ने शिव संहिता में जिन चार आसनों का वर्णन किया था उन्हीं में से एक आसन स्वस्तिकासन है। आसन पर बैठ जाएं, पैरों को सीधा आगे की ओर फैलाएं। अपने दाएं पैर को घुटने से मोड कर बाएं पैर की जांघ के पास ले आए। दाएं पैर को मोड़कर बाएं पैर की पिंडली के पास रखें। ज्ञान मुद्रा लगाएं और सीधे बैठें। ध्यान रखें कि कमर सीधी हो।

स्वस्तिकासन के लाभ

एकाग्रता और स्मरण शक्ति को बढ़ाता है। रक्त संचार को सुचारू करता है।जीवन में सकारात्मकता को बढ़ाता है। मानसिक रोगों को दूर करता है।

(6)वज्रासन

वज्र का अर्थ है, हीरे के समान कठोर। इस आसन के अभ्यास से पाचन तंत्र मजबूत होता है। एकमात्र यही आसान है जिसे भोजन करने के बाद किया जाता है।

वज्रासन करने की विधि – एक आसन पर बैठ जाए। अपने दोनों पैरों को सामने की तरफ खोलकर रखें। अपने बाएं पैर को घुटने से मोड़ते हुए बाई और नीचे ले जाकर रखें। दाएं पैर को घुटने से मोड कर दायीं और नीचे ले जाकर रखें। पीछे से दोनों पैरों के पंजे मिले हुए और एड़ियां खुली हुई रहें। पंजों पर ही शरीर का पूरा भार हो। 2 मिनट से शुरू कर आधा घंटा तक रुका जा सकता है। ध्यान रहे इस अवस्था में बैठने पर आपका पूरा ध्यान आपकी श्वासों के ऊपर रहे।

वज्रासन के लाभ – पाचन शक्ति बढ़ती है। एसिडिटी और गैस जैसी समस्याएं दूर होती हैं। मानसिक शांति प्राप्त होती है। कब्ज दूर होता है। रक्त संचार को बढ़ाने वाला होता है। पैरों की नसों को मजबूत बनाता है। ध्यान रहे जिनके घुटनों में दर्द रहता है उन्हें इस आसन का अभ्यास नहीं करना चाहिए।

(7)गौमुखासन – इस आसन में हमारे शरीर की आकृति गाय के चेहरे के समान दिखाई देती है इसी कारण इसे गौमुखासन कहा गया है। यह आसन शरीर के हर एक अंग को प्रभावित करता है।

गौमुखासन करने की विधि– सर्वप्रथम दंडासन (पैरों को बिल्कुल सीधा करके मिला ले दोनों हाथ कमर के पास रहे) में बैठ जाएं। बाएं पैर को घुटने से मोड़ते हुए दाएं नितम्ब के नीचे लाकर रखें। अब बाएं पैर को दाएं पैर के ऊपर इस प्रकार लाकर रखें कि एक पैर का घुटना दूसरे पैर के ऊपर रहे। जो पैर ऊपर की तरफ है उस तरफ का हाथ ऊपर कंधे के पास से लेकर जाएं और उसे कोहनी से मोडें। दूसरा हाथ नीचे की तरफ से कमर के पास से मोड कर लाएं और दोनों हाथों को मिलने की कोशिश करें। सामने देखें और ध्यान श्वास पर केंद्रित करें। कुछ समय लगभग 5 से 7

सेकंड इसी स्थिति में रुकने के बाद यही क्रिया दूसरी तरफ से भी दोहराएं।

लाभ– इस आसन को करने से हाथों और पैरों की मांसपेशियों में मजबूती आती है।

अस्थमा जैसे रोगों को दूर करने में मदद करता है। फेफड़े मजबूत होते हैं। मधुमेह जैसे रोग में फायदा देता है। शरीर को सुंदर और सुडौल बनाता है। हृदय को मजबूत बनाता है।

सावधानी –जिनको घुटनों में कंधों में दर्द की शिकायत हो उन्हें यह आसन नहीं करना चाहिए।

(8)बकासन – बक अर्थात् बगुला। इस आसन में शरीर की आकृति बगुले के समान दिखाई देती है इसीलिए इसे बकासन कहा जाता है। यह आत्मविश्वास को बढ़ाने वाला आसन है।

विधि – सर्वप्रथम उकड़ु बैठें । दोनों हाथों की हथेलियों को जमीन पर रखें। अब अपने दोनों घुटनों को कोहनियों के ऊपर भुजाओं पर लाकर रखें। धीरे–धीरे पैरों को ऊपर की तरफ उठाएं। पूरे शरीर का भार भुजाओं पर रहेगा। इसी स्थिति में जब दोनों घुटने कोहनियों के पास रहेंगे और पैर ऊपर उठे रहेंगे तो वह स्थिति बकासन कही जाती है। इसी स्थिति में थोड़ी देर 5 से 10 सेकंड रुके रहेंगे।

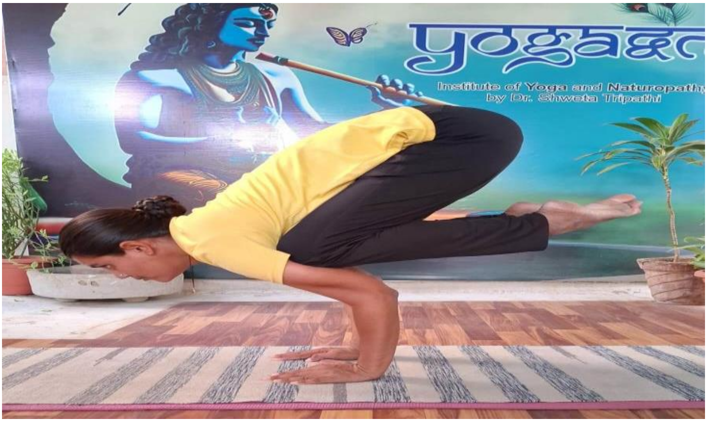

लाभ – इस आसन को करने से हाथों की कलाइयां और पंजे मजबूत होते हैं। चेहरे पर चमक लेकर आता है। शरीर में बैलेंसिंग को बढ़ाता है। आंखों के लिए बहुत अच्छा रहता है। सर्वाइकल और साइटिका से ग्रस्त रोगियों को यह नहीं करना चाहिए।

(9)उष्ट्रासन – इस आसन को करने से शरीर ऊंट के आकार जैसा दिखता है, इसलिए इसे उष्ट्रासन कहा जाता है। यह एक उत्कृष्ट योगासन है, जो रीढ़, छाती और पेट को लचीला बनाता है।

उष्ट्रासन करने की विधि –सबसे पहले योगा मैट पर घुटनों के बल खड़े हो जाएं।पैरों को थोड़ा अलग रखें और दोनों हाथों को कमर पर रखें। श्वास लेते हुए धीरे–धीरे कमर को पीछे की ओर झुकाएं। अब दोनों हाथों से एड़ियों को पकड़ें और सिर को भी पीछे की ओर ले जाएं। छाती को ऊपर की ओर उठाएं और कुछ सेकंड इस स्थिति में रहें। श्वास छोड़ते हुए धीरे–धीरे वापस सामान्य स्थिति में आएं।

लाभ – यह आसन रीढ की हड्डी को लचीला और मजबूत बनाता है। यह आसन पेट की मांसपेशियों को उत्तेजित करता है, जिससे पाचन क्षमता बढ़ती है। यह छाती को खोलने में मदद करता है, जिससे श्वसन तंत्र बेहतर होता है। तनाव और चिंता को कम करता है । कमर और पीठ दर्द में राहत देता है।

सावधानियां – अगर कमर या गर्दन में कोई चोट है, तो यह आसन करने से बचें। उच्च रक्तचाप या माइग्रेन के मरीज इसे सावधानीपूर्वक करें। शुरुआत में यह आसन योग शिक्षक की देखरेख में करें।

(10)कुक्कुटासन – कुक्कुटासन शरीर में बैलेंसिंग को बनाए रखने और सहनशीलता बनाए रखने का महत्वपूर्ण कार्य करता है।

विधि – सर्वप्रथम पद्मासन में बैठ जाएं। दाएं हाथ को दाएं पैर की पिंडली और जांघ के बीच में से नीचे की तरफ लेकर जाएं और बाएं हाथ को बाएं पैर की पिंडली और जांघ के बीच में से नीचे की तरफ लेकर जाएं और जमीन पर टिका दें।

धीरे–धीरे गहरी श्वास लेते हुए शरीर को जमीन से ऊपर की तरफ उठाएं और हाथों की कोहनियों तक ले आएं। लगभग 10 से 15

सेकंड रुकने के बाद श्वास को बाहर निकालते हुए पूर्ववत स्थिति में आएं।

लाभ – यह आसन कंधों और कोहनी को मजबूती प्रदान करता है। शरीर में स्फूर्ति और संतुलन को बनाए रखना है। जिनके घुटनों में दर्द रहता है उन्हें यह आसन नहीं करना चाहिए।

(11)मयूरासन – इस आसन में शरीर की आकृति मोर के समान दिखाई देती है इसी कारण से मयूरासन कहा जाता है। मोर एक बहुत ही सुंदर दिखने वाला पक्षी है इस आसन के निरंतर अभ्यास से त्वचा में कांति आती है। शारीरिक और मानसिक स्थिरता लेकर आता है।

विधि – सर्वप्रथम वज्रासन में बैठ जाएं। दोनों हाथों की कोहनियों को मोड़कर अपनी नाभि के पास में लाकर रखें। फिर धीरे–धीरे संतुलन बनाते हुए आगे की ओर झुकें अपनी हथेलियों को खोल दें और जमीन के लगा दें। धीरे–धीरे बैलेंस बनाते हुए अपने दोनों पैरों को एक–एक करके पीछे की तरफ लेकर जाएं। जब पैर सीधे हो जाएं तो धीरे–धीरे सिर को ऊपर उठाने की कोशिश करें। इस स्थिति में पूरे शरीर का भार दोनों हाथों के ऊपर रहेगा। 5 से 7

सेकंड इसी अवस्था में रुके रहेंगे धीरे–धीरे दोनों पैरों को नीचे लेंगे और अपने हाथों को हटा लेंगे। कम से कम एक महीने के निरंतर अभ्यास के बाद यह आसन सुचारू रूप से होने लगेगा। किसी प्रकार का झटका शरीर को नहीं देना है बहुत शांति के साथ किया जाना चाहिए और इस आसन को करते समय जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए।

लाभ – मयूरासन करने से पेट के सभी अंग अग्नाशय, अमाशय, यकृत आदि मजबूत होते हैं। एकाग्रता बढ़ती है शरीर को बैलेंस करने में सहायक है। गर्दन को सुदृढ़ बनाने में सक्षम है। रक्त संचार को सुचारू करता है और नेत्रों से संबंधित समस्याओं को दूर करता है। हृदय से संबंधित रोगी को नहीं करना है।

(12)पद्म मयूरासन – पद्म मयूरासन अध्यात्मिक और भावनात्मक संतुलन को बढ़ाने वाला एक ऐसा आसन है जो दृढ़ संकल्प शक्ति को भी बढ़ाने में सहायक है । यह मनुष्य में आत्म सम्मान की भावना को बढ़ाकर मणिपुर चक्र को सक्रिय करने में भी सक्षम है।

विधि – सर्वप्रथम सुखासन में बैठ जाएं और पद्मासन लगा लें। फिर अपने दोनों हाथों को कोहनियों से मोड कर अपने नाभि चक्र के पास लाकर रखें। ध्यान रहे दोनों हाथों की मुट्ठियां बंद रहेंगी धीरे–धीरे हथेलियों को खोलकर आगे की और झुकते हुए दोनों हथेलियां को जमीन पर टिका दें। अपने पैरों को ऊपर उठाने की

कोशिश करें और पूरे हाथों के ऊपर पूरे शरीर का भार उठा लें, शरीर हवा में रहेगा।

लाभ – यह शारीरिक और मानसिक शक्तियों को बढ़ाने वाला आसन है। हाथों की मांसपेशियों को अत्यंत मजबूती देता है। पूरे शरीर में लचीलापन लेकर आता है और उसे सुदृढ़ बनाता है ।

कंधों में दर्द होने पर आसन नहीं करना चाहिए।

(13)टिट्टीभासन – टिट्टीभ एक प्रकार का पक्षी है जो जल प्रपातों के आसपास पाया जाता है। यह शरीर के संतुलन को बढ़ाने में एक कारगर आसन है।

विधि – किसी आसन पर दोनों पैरों के बीच फासला रखते हुए खड़े हो जाएं। आगे की तरफ कमर से झुकते हुए दोनों घुटनों को मोड़ें। दाएं हाथ को दाएं पैर के दाएं तरफ ले जाकर रखें और बाएं हाथ को बाएं पैर के अंदर से बाईं तरफ ले जाते हुए रखें।

धीरे–धीरे दोनों पैरों को सामने की तरफ फैलाएं और दोनों पैरों को अपने कंधों के ऊपर से उठाएं। इस स्थिति में आने पर पूरे शरीर का भार हाथों पर रहेगा। सामने किसी भी एक बिंदु के ऊपर एकाग्र हो जाएं। कुछ सेकंड रुकने के पश्चात पुनः पहले वाली स्थिति में आ जाएं।

लाभ – यह आसन हाथों और कंधों को बहुत मजबूत बनाता है। पाचन शक्ति को बढ़ाने वाला होता है। रक्त प्रवाह में मदद करता है। महिलाओं में गर्भाशय को मजबूत बनाता है। हृदय से संबंधित बीमारी में कंधों की परेशानी होने पर यह नहीं करना है।

(14)अर्ध मत्स्येंद्रासन – गुरु मत्स्येंद्रनाथ जो हठयोग के प्रथम गुरु कहे गए हैं उन्हीं के नाम पर इस आसन का नाम पड़ा। बैठकर किए जाने वाले आसनो में से एक महत्वपूर्ण आसन है। सर्वप्रथम दंडासन में बैठ जाएं। बायें पैर को घुटने से मोड कर दाएं नितम्ब के नीचे रखें। दाएं पैर को बायें घुटने के सामने इस प्रकार लाकर रखें कि घुटने का रुख ऊपर आसमान की तरफ रहेगा। अब अपना दायां हाथ दाएं तरफ से पीछे की तरफ लेकर जमीन पर रखें। बाएं हाथ को दाएं घुटने के पास से नीचे की तरफ लेकर जाएं और पैर को पकड़ लें। लगभग 15 से 20 सेकंड इसी स्थिति में रुके रहें। दोनों पैरों को खोलकर सामने करें। फिर दूसरी तरफ से भी यही क्रिया दोहराएं।

लाभ– जिनको मधुमेह की बीमारी है उन्हें यह करना ही चाहिए। मांसपेशियों में खिंचाव लेकर आता है। रीढ़ की हड्डी को मजबूत और लचीला बनाता है। शरीर की चर्बी को कम करता है।

(15)पश्चिमोत्तानासन – बैठकर किए जाने वाला एक ऐसा आसान है जिससे शरीर के हर अंग में खिंचाव होता है और मानसिक सुदृढ़ता लेकर आता है।

पश्चिमोत्तानासन करने की विधि – सर्वप्रथम दंडासन में बैठ जाएं। गहरी श्वास लेते हुए अपने दोनों हाथों को ऊपर की तरफ लेकर जाएं। श्वास को बाहर निकालते हुए आगे की तरफ झुकें और दोनों हाथों से पैरों के पंजों को पकड़ लें। इस स्थिति में ठोड़ी या सिर घुटनों के लगा हुआ रहेगा। दोनों हाथों की कोहनियां जमीन को स्पर्श करेंगीं। 15 से 20 सेकंड इसी स्थिति में रुके रहने के बाद पुनः गहरी श्वास लेते हुए ऊपर उठें।

लाभ– अनिद्रा जैसे रोगों को दूर करता है। रीढ की हड्डी को मजबूत बनाता है। नेत्र रोगों में उपयोगी है। थायराइड को दूर करने वाला होता है। पेट की चर्बी को कम करता है। वजन कम करता है। रक्तचाप को दूर करने में लाभदायक है। हड्डियों को मजबूत बनाता है। बच्चों की लंबाई को बढ़ाता है।

(16)सुप्त वज्रासन –वज्रासन की स्थिति में जब सीधा लेटा जाता है तो उसे सुप्त वज्रासन कहा जाता है। यह तन और मन दोनों को स्वस्थ रखने के साथ मन में उत्साह बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण आसन है।

विधि– आसन पर दंडासन में बैठ जाएं। वज्रासन लगाएं। अब धीरे–धीरे कोहनियों का सहारा लेते हुए पीछे की तरफ पीठ के बल पर लेट जाएं। दोनों हाथ पैरों पर रहेंगे। 10 से 15 सेकंड इसी स्थिति में लेटे रहें। श्वास लेते रहे और बाहर निकालते रहें। पुनः कोहनियों का सहारा लेते हुए उठ जाएं। वज्रासन खोल दें।

लाभ – इस आसन के अभ्यास से पैरों की मांसपेशियों में खिंचाव होता है और उनमें लचीलापन आता है। श्वसन तंत्र मजबूत होता है। एकाग्रता बढ़ती है। पेट से संबंधित परेशानियां जैसे कब्ज एसिडिटी आदि से निजात मिलती है। घुटने,पेट और पीठ मजबूत होते हैं। हृदय से संबंधित परेशानी और बीपी हाई में यह आसन नहीं करना चाहिए।

(17)शशकासन – शशक का अर्थ होता है,खरगोश। इस आसन से खरगोश के समान स्फूर्ति आती है और यह सुंदरता को बढ़ाने में भी सहायक है। इसका एक नाम शशांकासन भी है । शशांक का अर्थ होता है चंद्रमा। इस आसन के करने से चेहरे पर चंद्रमा के समान कांति और तेज दिखाई देता है।

विधि – सर्वप्रथम वज्रासन में बैठ जाएं। दोनों हथेलियां को घुटनों पर लाकर रखें।

गहरी श्वास लेते हुए दोनों हाथों को ऊपर की तरफ लेकर जाएं। श्वास को बाहर निकालते हुए आगे की तरफ झुकेंगे और दोनों हथेलियों को और सिर को जमीन के लगा देंगे, दोनों भुजाएं जमीन के लगी हुई रहेंगी। इस स्थिति में नितंब पैरों पर ही रहेंगे। 20 से 25 सेकण्ड इसी स्थिति में रुके रहने के बाद गहरी श्वास लेते हुए पुनः हाथों को ऊपर उठाएंगे और कमर को ऊपर लेंगे। इस क्रिया को 5 से 7 सेकेंड रुकते हुए तीन बार दोहराया जा सकता है।

लाभ –इस आसन के अभ्यास से आंखों और मस्तिष्क को शांति प्रदान होती है। फेफड़ों को मजबूत बनाता है और स्नायु तंत्र को बल प्रदान करता है। घुटनों से संबंधित परेशानी में यह नहीं करना है।

(18)भूनमनासन – भूमि को नमस्कार करने वाला आसन जो व्यक्ति में श्रद्धा की भावना को बढ़ाने वाला है।

विधि – सर्वप्रथम आसन पर अपने दोनों पैरों को सामने करते हुए दंडासन में बैठ जाएं।

धीरे–धीरे दोनों पैरों के बीच फासला दें, जितना कि आप दे सकें। गहरी श्वास लेते हुए दोनों हाथों को ऊपर की तरफ लेकर जाएं और श्वास को बाहर निकालते हुए आगे की तरफ कमर से झुकें, दोनों हाथों से पैरों के पंजों को पकड़ लें और सिर जमीन के लगा दें। 5 से 10 सेकंड रुकने के पश्चात गहरी श्वास लेते हुए पुनः उठें। यह क्रिया दोहराई भी जा सकती है।

लाभ – यह आसन पेट की चर्बी को कम करता है। वजन कम करने में सहायक है। पैरों की मांसपेशियों में खिंचाव करता है और लचीलापन लेकर आता है। पेट के आंतरिक अंगों को मजबूती प्रदान करता है। साइटिका में यह नहीं करना है।

(19)आकर्ण धनुरासन – इस आसन में पूरा शरीर खींचे हुए धनुष के आकार का दिखाई देता है और ऐसा प्रतीत होता है कि धनुष के मध्य बाण का भी प्रयोग किया जा रहा है।

विधि – बिल्कुल सीधे बैठ जाएंगे दोनों पैर सामने की तरफ और पास–पास रहेंगे।

आगे की तरफ झुकते हुए दोनों हाथों से पैर के पंजे को पकड़ेंगे। बायां पैर बिल्कुल सीधा रहेगा और दाएं पैर के पंजे को पकड़ते हुए कान के पास लगाएंगे। बाएं पैर को बाएं हाथ से पकड़े रहेंगे पर इस अवस्था में भी गर्दन बिल्कुल सीधी रहेगी। श्वासों की गति सामान्य रहेगी। कुछ समय इसी अवस्था में रहने के बाद पूर्ववत स्थिति में आएंगे और दूसरी तरफ से भी यही क्रिया दोहराएंगे।

लाभ – अस्थमा के रोगी को फायदा देने वाला होता है। कूल्हे की मांसपेशियों में खिंचाव लेकर आता है। हाथों और पैरों की मांसपेशियों में मजबूती लेकर आता है। मानसिक शांति देने वाला होता है।

(20)गर्भासन – गर्भासन में शरीर का आकार गर्भस्थ शिशु की भांति दिखाई देता है। क्रोध और तनाव को दूर करता है। स्त्रियों के लिए यह आसन बहुत ही महत्वपूर्ण है।

विधि – सर्वप्रथम पद्मासन में बैठ जाए दोनों ही हाथों को दोनों पैरों की पिंडलियों और जांघों के अंदर से इस प्रकार निकाले की हाथों की कोहनियां मुड़ी हुई रहे। धीरे–धीरे दोनों कोहनियों को मोड़ते हुए दोनों हथेलियों से कानों को पकड़ लें। नितंबों पर शरीर का भार रहेगा दोनों पैर और जंघा भी ऊपर उठे रहेंगे, इस प्रकार की घुटनों का रुख आसमान की तरफ रहेगा। कुछ सेकंड रुकने के पश्चात पहले वाली स्थिति में आए।

लाभ – गर्भाशय को मजबूत बनाता है मासिक धर्म में होने वाली समस्याओं को दूर करता है। शरीर की कमजोरी को दूर करता है। इम्यूनिटी को बढ़ाता है। बीपी के रोगी को ऐसे नहीं करना चाहिए।

(21)वक्रासन – वक्र का अर्थ होता है टेढ़ा–मेढ़ा । ऐसा नहीं है कि यह आसन करने से शरीर टेढ़ा हो जाता है बल्कि इससे शरीर की ट्विस्टिंग होती है। मांसपेशियां लचीली होती हैं।

विधि –सर्वप्रथम दंडासन में बैठें अपना दायां पैर बिल्कुल सीधा रखें। बायें पैर को घुटने से मोड़कर इस प्रकार लाकर रखें कि बाएं पैर का पंजा दाएं पैर के घुटने के पास रहेगा और बाएं पैर का घुटना ऊपर की तरफ रहेगा। दोनों हथेलियों को बाएं पैर के एक तरफ लाकर रखें। दाईं हथेली की उंगलियों का रुख दाएं तरफ और बाएं हथेली की उंगलियों का रुख बाईं तरफ रहेगा। 15 से 20 सेकंड इसी अवस्था में रुके रहने के पश्चात दूसरी तरफ से भी यही क्रिया दोहराएं।

लाभ – इस आसन से रीढ़ की हड्डी मजबूत होती है और उसमें लचीलापन आता है।

मानसिक संतुलन बनाता है। मधुमेह में लाभकारी है। जिनके शरीर में ऐंठन की परेशानी होती है उन्हें यह करना ही चाहिए। फेफड़ों को मजबूत बनाता है। पाचन क्रिया से संबंधित अंगों को सक्रिय करता है।

(22)जानू शीर्षासन – जानू का अर्थ है घुटना और शीश का अर्थ है सिर। इस आसन में सिर को घुटने के लगाया जाता है। जीवन में अवसाद को दूर कर मानसिक शांति प्रदान करने वाला आसन है।

विधि – सर्वप्रथम आसन पर बैठकर अपने दोनों पैरों को सीधा करें दोनों हाथ कमर के पास लगे हुए रहेंगे दायां पैर बिल्कुल सीधा

रखते हुए बाएं पैर को घुटने से मोड करके इसके पंजे को दाएं पैर की जांघ के पास लाकर रखें। अब गहरी श्वास लेते हुए दोनों हाथों को ऊपर उठाएं और श्वास को बाहर निकालते हुए आगे की तरफ झुकते हुए दोनों हाथों से दाएं पैर के पंजे को पकड़ लें और सिर घुटने के लगा दें। कुछ समय ऐसी स्थिति में रुके रहने के बाद दूसरे पैर से भी यही क्रिया करें।

लाभ

इस आसन को करने से फेफड़े, पिंडली और गले की मांसपेशियों में खिंचाव होता है।

थायराइड वालों के लिए आसन बहुत अच्छा रहता है। यह आसन सिर से लेकर पैरों तक हर अंग को लाभ देने वाला है। शरीर की अकड़न को दूर करता है।

(23)शीर्षासन –सिर के बल पर खड़ा रहकर किया जाने वाला आसन। इसमें सिर नीचे और पैर ऊपर रहते हैं। शरीर में जब हारमोंस का असंतुलन होता है तो उसे संतुलित करने के लिए यह आसन उपयुक्त है। यह थोड़ा कठिन है परंतु निरंतर अभ्यास से कुछ महिनों में इसे किया जा सकता है।

विधि – सर्वप्रथम वज्रासन में बैठ जाएं। दोनों हाथों को एक दूसरे में फंसाते हुए , सामने की तरफ झुकते हुए जमीन पर लाकर रखें। सिर को इन हथेलियों के बीच में ले जाकर रखें। धीरे–धीरे दोनों पैरों को अपने सिर की तरफ लेकर आएं और आसानी के साथ उन्हें ऊपर की तरफ उठाने का प्रयास करें। शुरू–शुरू में यह आसन करते समय दीवार का सहारा लेना चाहिए। 5 से 7 सेकंड रुकने के बाद दोनों पैरों को नीचे लेकर आएं और पूर्ववत स्थिति में आ जाएं।

लाभ – यह आसन आंखों के लिए बहुत अच्छा रहता है। रक्त संचार को बढ़ाता है। इम्यूनिटी को बढ़ाने वाला है। अनिद्रा जैसे रोग में लाभदायक है। मांसपेशियों की मजबूती में सहायक है। बालों को काला,घना और मजबूत बनाता है। हृदयरोग में यह आसन नहीं करना चाहिए।

(24)चक्रासन – यह आसन करने पर शरीर चक्र की आकृति का दिखाई देता है इसीलिए इसे चक्रासन कहा जाता है। सीधे लेट कर किए जाने वाले आसनों में से एक महत्वपूर्ण आसन है।

विधि – किसी आसन पर पीठ के बल लेट जाएं। दोनों घुटनों को मोड़ लें और उन में फासला दें। दोनों हाथों को इस प्रकार अपने

कंधों के पास लाकर रखें की कोहनियों का रुख आसमान की तरफ रहेगा और हथेलियों की उंगलियां पैरों की तरफ रहेंगी।

गहरी श्वास लेते हुए धीरे–धीरे पूरे शरीर को पैरों और हाथों के पंजों के बल पर ऊपर उठाएं। छाती को भी ऊपर उठाएं। 7 से 10 सेकंड इसी स्थिति में रुकने के बाद श्वास को बाहर निकालते हुए धीरे–धीरे नीचे आ जाए।

लाभ – हाथों की कोहनियां और कलाइयां मजबूत होती हैं। सीने को बल मिलता है।

वजन कम करने में सहायक है। लंबाई बढ़ती है। शरीर के मांसपेशियों में खिंचाव होता है और वह लचीली बनती है। कमर लचीली होती है और मजबूत होती है। आंखों और बालों के लिए बहुत अच्छा रहता है। कमर दर्द में किया जाता है। जठरग्नि को प्रदीप्त करता है।

(25)पवनमुक्तासन – नाम से ही पता चल रहा है, शरीर से वायु को मुक्त करने वाला आसन। जिन्हें पेट से संबंधित परेशानियां रहती है, जिनको गैस की परेशानी है उनके लिए यह आसन सबसे ज्यादा लाभदायक है।

विधि – बिल्कुल सीधे पीठ के बल पर लेट जाएंगे दोनों पैर आपस में मिले रहेंगे धीरे–धीरे दोनों पैरों को घुटनों से मोड़ते हुए अपने

नितंबों के पास लेकर आएंगे दोनों हाथों से घुटनों को पकड़ेंगे इस अवस्था में गहरी श्वास लेंगे और श्वास को बाहर निकालते हुए दोनों हाथों से घुटनों को पड़कर सीने के पास लेकर आएंगे और सिर को जमीन से उठाकर उसे घुटनों के लगाएंगे। 10 से 15 सेकंड रुकने के बाद पुनः पूर्व की स्थिति में आएंगे। यह क्रिया तीन बार की जा सकती है।

लाभ – एसिडिटी और कब्ज को दूर करने में सहायक यकृत से संबंधित बीमारियों में फायदा होता है। पेट की चर्बी को कम करता है। वजन को कम करने में सहायक। थायराइड के रोगी के लिए उपयुक्त आसन है।

(26)कर्ण पीडासन –तनाव और थकान को दूर करके कान से संबंधित रोगों को दूर करने में सक्षम है कर्ण पीड़ासन।

विधि– बिल्कुल सीधे पीठ के बल पर लेते जाएंगे धीरे–धीरे पैरों के ऊपर उठाते हुए हलासन की स्थिति में आएंगे। दोनों पैरों को धीरे–धीरे घुटनों से मोड़ते हुए घुटनों को कानों के पास लगा देंगे। कुछ समय इसी स्थिति में रुकने के बाद पुनः पैरों को ऊपर उठाते हुए सीधे लेट जाएंगे।

लाभ – नेत्र और कानों से संबंधित रोगों में फायदा देता है। थायराइड और कब्ज और अजीण को दूर करता है। रक्त विकारों को दूर करके त्वचा को कांति में बनता है और त्वचा से संबंधित रोगों को भी दूर करता है। शरीर को लचीला बनाता है।

(27)योग निद्रासन – जीवन में एकाग्रता और सतर्कता को बढ़ाने वाला एक महत्वपूर्ण आसान है योग निद्रासन।

विधि – सर्वप्रथम पीठ के बल लेट जाएं। अपने दाएं पैर को ऊपर उठाते हुए दोनों हाथों का सहारा देते हुए अपनी गर्दन के पीछे लेकर जाए। बाएं पैर से भी यही क्रिया करें। इस अवस्था में दोनों पर कर के पीछे की तरफ आ जाएंगे और धड़ उनके मध्य में रहेगा। दोनों हाथों को अपने नितंबों के ऊपर रखें और इसी अवस्था में 10 सेकंड रुकें। तत्पश्चात दोनों हाथों का सहारा देते हुए दोनों पैरों को एक–एक करके नीचे ले आएं ।

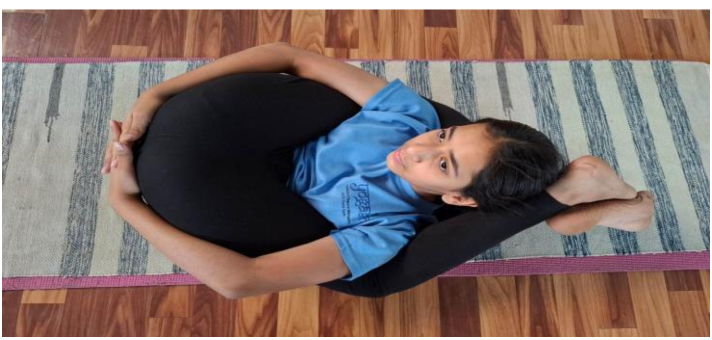

लाभ – इस आसन के अभ्यास से पेट से संबंधित समस्याएं और आंतों की समस्याएं दूर होती हैं। शरीर में रक्त संचरण और ऑक्सीजन का प्रवाह बढ़ता है। अनिद्रा जैसे रोग में लाभदायक है। शरीर में ऊर्जा लेकर आता है।

(28)मत्स्यासन – मत्स्य का अर्थ होता है मछली और इस आसन के अभ्यास से और श्वासों पर पूर्ण ध्यान देते हुए शरीर मछली की तरह हल्का हो जाता है और पानी पर भी तैरने लगता है इसी कारण इसे मत्स्यासन कहा जाता है। इसके लिए नियमित अभ्यास आवश्यक है और कुछ सालों के अभ्यास के बाद ऐसा होता है।

विधि – सर्वप्रथम सीधे पीठ के बल पर लेट जाएंगे । दोनों हाथों और पैरों को बिल्कुल सीधा रखेंगे। फिर लेटे–लेटे ही पद्मासन या सुखासन लगाएंगे। दोनों हाथों से अपनी गर्दन को सहारा देते हुए इस प्रकार उठा कर रखेंगे कि सिर का ऊपरी हिस्सा जमीन को छूएगा। इस अवस्था में गर्दन की सारी मांसपेशियो में खिंचाव होगा फिर दोनों हाथों को आगे लाते हुए दोनों हाथों से पैरों के अंगुठों को पकड़ लेंगे। 10 सेकंड इसी अवस्था में रुकने के बाद दोनों हाथों का सहारा देते हुए गर्दन को सीधा करेंगे और पद्मासन या सुखासन खोल देंगे। इस क्रिया को दो बार किया जा सकता है।

लाभ – यह आसन थायराइड वालों के लिए बहुत अच्छा रहता है। मानसिक शांति प्रदान करता है। आंखों के लिए बहुत अच्छा रहता है। चेहरे की मांसपेशियों में खिंचाव होता है। कमर दर्द वाले भी से कर सकते हैं और कंधों में मजबूती लाने वाला होता है।

(29)हलासन – हलासन में शरीर की आकृति हल के समान दिखाई देती है। नाडी तंत्र को शांत करने और शुद्ध बनाने के लिए यह आसन उत्तम है।

विधि – सर्वप्रथम आसन पर सीधे पीठ के बल पर लेट जाएं। दोनों पैरों को बिल्कुल सीधा करें आपस में मिलाएं। गहरी श्वास लेते हुए सर्वांगासन की स्थिति में आएं और श्वास को बाहर निकालते हुए दोनों पैरों को धीरे–धीरे अपने सिर के पीछे की तरफ लेकर आए और जमीन के लगा दें। ध्यान रहे जब हम पैरों को पीछे की तरफ लेकर जाएंगे तो दोनों हाथ कमर के ऊपर रहेंगे। अब दोनों हाथों की उंगलियों को एक दूसरे में फंसाते हुए नीचे जमीन से लगा दें। 10 सेकंड इसी स्थिति में रुकने के बाद पुनः हाथों को सहारा देते हुए पैरों को सीधा करें कमर को धीरे–धीरे नीचे ले आएं।

लाभ – इससे रीढ की हड्डी लचीली बनती है। जिनको माइग्रेन की परेशानी है उनके लिए अच्छा आसन है। लीवर, प्लीहा और पेट संबंधित रोगों को दूर करने में समर्थ है।

शरीर में ऊर्जा की मात्रा को बढ़ाने वाला आसन है। मोटापे को कम करता है। मेटाबॉलिज्म को बढ़ाता है। शरीर में लगातार रहने वाली थकान को दूर करता है।

(30)सर्वांगासन – नाम से ही पता चल रहा है, सर्वांगासन अर्थात् सभी अंगों को बल देने वाला आसन। यह आसन करने से शरीर के सभी अंगों को ऊर्जा प्राप्त होती है।

विधि– बिल्कुल सीधे पीठ के बल पर लेट जाएं। दोनों पैरों को साथ मिलाते हुए धीरे–धीरे ऊपर उठाएं। दोनों हाथों से कमर को सहारा देते हुए दोनों पैरों को ऊपर उठा लें और 90 डिग्री पर ले आएं दोनों हाथों की हथेलियां बिल्कुल सीधी कमर के ऊपर रहेंगी और कोहनी नीचे जमीन पर टिकी हुई रहेगी। पैरों के पंजे बिल्कुल सीधे तने हुए रहेंगे। कुछ समय रुकने के पश्चात् दोनों हाथों से कमर को सहारा देते हुए नीचे ले आएं।

लाभ – मासिक धर्म संबंधी परेशानियों को दूर करता है। गर्भाशय को मजबूती देता है।

एलर्जी और थायराइड जैसे रोगों में लाभ देता है। नेत्र ज्योति को बढ़ाने के लिए अच्छा है। बालों को काला और घना बनाता है। मस्तिष्क में रक्त और ऑक्सीजन के प्रभाव को सुचारू करता है ।

(31)उत्तानपादासन – उत्तान का मतलब होता है, खींचा हुआ । इसमें पैर खिंचे हुए और ऊपर उठे हुए रहते हैं। इसी कारण इस

आसन से पेट की मांसपेशियों में खिंचाव होता है और पेट के लिए बहुत लाभदायक सिद्ध होता है।

विधि – पीठ के बल पर बिल्कुल सीधे लेट जाएंगे। गहरी श्वास लेते हुए दोनों पैरों को ऊपर उठाएंगे लगभग 30 डिग्री पर लाकर रोकेंगे। सिर जमीन के ही लगा हुआ रहेगा।

दोनों हाथ बिल्कुल सीधे जमीन के लगे हुए रहेंगे। पैरों के पंजों को देखेंगे। 15 से 20 सेकंड इसी स्थिति में रुके रहने के बाद श्वास को बाहर निकलते हुए पुनः पैरों को नीचे ले आएंगे।

लाभ – जिनकी नाभि बार–बार अपनी जगह से खिसक जाती है, उनके लिए ये आसन बहुत अच्छा है। पेट से संबंधित सभी रोगों को दूर करने में सक्षम है। आंतों को मजबूत बनाते हुए ,जठराग्नि को प्रदीप करता है। पैरों के पंजों को लगातार देखने से एकाग्रता की वृद्धि होती है।

(32)हस्त पादांगुष्ठासन – हाथों से लेकर पैरों तक पूरे शरीर में खिंचाव लेकर आता है, हस्त पादांगुष्ठासन।

विधि – पीठ के बल बिल्कुल सीधे लेटे हुए गहरी श्वास लेंगे और दोनों पैरों को ऊपर उठाएंगे। श्वास को बाहर निकालते हुए अपने सिर को भी ऊपर उठाएंगे और दोनों हाथों से दोनों पैरों के पंजों

को पकड़ लेंगे। इस स्थिति में पैरों के मध्य थोड़ा फासला रहेगा। धीरे–धीरे कुछ समय पश्चात् पैरों को नीचे ले आएंगे।

लाभ – हृदय और फेफड़ों को मजबूत बनाता है। शरीर की मांसपेशियों में खिंचाव करके उन्हें लचीला बनाता है।

(33)नौकासन – यह आसन करने से शरीर नाव की आकृति के समान दिखाई देता है इसीलिए इसे नौकासन कहा जाता है। इसे बैठकर और सीधे लेट कर दोनों ही तरह से किया जा सकता है।

विधि – सर्वप्रथम बिल्कुल सीधे पीठ के बल पर लेट जाएंगे। गहरी श्वास लेते हुए पैरों को ऊपर उठाएंगे और साथ ही अपने सिर को भी ऊपर उठाएंगे। कमर से ऊपर वाला शरीर और पैर दोनों का भार नितंबों पर रहेगा दोनों हाथ पैरों के बराबर लगे हुए रहेंगे।

पेट की मांसपेशियों और नाभि तंत्र पर खिंचाव होगा। लगातार अपने पैरों के पंजों को देखते रहेंगे। 7 से 10 सेकंड रुकने के बाद श्वास को बाहर निकालते हुए दोनों हाथों को नीचे ले आएंगे और गर्दन को नीचे ले आएंगे।

लाभ – मेरुदंड को मजबूत बनाता है। पूरे शरीर का बैलेंस बनाता है।

(34)सेतुबंधासन – यह आसन करने से शरीर की आकृति सेतु के समान हो जाती है इसी कारण से सेतुबंधासन कहा जाता है।

विधि – बिल्कुल सीधे पीठ के बल पर लेट जाएंगे। दोनों पैरों को घुटनों से मोड़ेंगे, इस प्रकार की एड़ियां नितंबों के पास आ जाएगी। पैरों के मध्य थोड़ा फासला रहेगा। दोनों हाथों से पैरों की एड़ियों को पकड़ेंगे। गहरी श्वास लेते हुए कमर को इस प्रकार ऊपर उठाएंगे की कंधों तक का पूरा शरीर ऊपर उठा रहेगा। कंधे जमीन के लगे रहेंगे।

कुछ समय रुकने के बाद श्वास को बाहर निकालते हुए धीरे–धीरे कमर को नीचे ले आएंगे।

लाभ – कमर दर्द में यह आसन बहुत फायदा देता है इसे 3 से 4 बार तक दोहराया जा सकता है। छाती और गर्दन को मजबूत बनाता है। थायराइड वालों के लिए बहुत अच्छा रहता है। डिप्रेशन में कराया जाता है।

(35)धनुरासन – धनु का अर्थ है धनुष। इस आसन में शरीर की आकृति धनुष के समान दिखाई देती है और इसी के समान यह कमर को लचीला बना देता है।

विधि –आसन पर पेट के बल लेट जाएंगे। दोनों पैरों के बीच फासला देंगे और फिर उनको घुटनों से मोड़ेंगे। दोनों हाथों से पैरों के अंगूठे को पकड़ेंगे। पूरे शरीर को पेट के बल पर ऊपर उठा लेंगे।

लाभ – पेट की मांसपेशियों में खिंचाव होता है, मणिपुर और स्वाधिष्ठान चक्र मजबूत बनता है। गर्भाशय को और पाचन तंत्र को बल प्रदान करता है। हाथों और पैरों की मांसपेशियों में खिंचाव लाकर उन्हें लचीला बनाता है।

(36)शलभासन – शलभ एक प्रकार का कीट होता है उसी की आकृति इस आसन को लगाने पर दिखाई देती है।

विधि – पेट के बल पर लेट जाएं। दोनों हाथों की हथेलियां बिल्कुल पैरों के पास रहेंगी और आसमान की तरफ रहेंगी। गहरी श्वास लेते हुए दोनों पैरों को बिल्कुल सीधा ही ऊपर की तरफ उठाएंगे और हवा में झुला देंगे। दोनों हाथों को कमर के ऊपर इस

स्थिति में लाकर रखेंगे। यदि कमर के ऊपर ना भी रखना चाहें तो दोनों हाथों को जांघों के नीचे रखा जा सकता है। कमर से नीचे वाला भाग ऊपर उठा रहेगा और कमर से ऊपर वाला शरीर सिर तक का भाग जमीन के लगा हुआ रहेगा। कुछ समय इसी अवस्था में रुकने के बाद धीरे–धीरे श्वास को बाहर निकालते हुए पैरों को नीचे ले आएंगे और विश्राम की स्थिति में आएंगे।

लाभ – इस आसन से हाथ, पैर, जांघ और पिंडलियों की मांसपेशियां मजबूत होती हैं।

शरीर की चर्बी को कम करता है। रक्त संचरण सही करता है। सूक्ष्म तंत्रिकाओं को बलशाली बनता है।

(37)विपरीत नौकासन – विपरीत का अर्थ है उल्टा। उल्टे अर्थात् पेट के बल पर लेट कर यह आसन किया जाता है।

विधि – सर्वप्रथम पेट के बल पर लेट जाएंगे। दोनों हाथ और पैर बिल्कुल सीधे रहेंगे

धीरे–धीरे दोनों हाथों को अपने सिर के ऊपर की तरफ लेकर जाएंगे और नमस्कार की स्थिति में ले आएंगे । गहरी श्वास लेते हुए दोनों हाथों और पैरों को ऊपर उठाएंगे और पूरे शरीर का भार नाभि के ऊपर रहेगा कुछ समय रुकने के बाद धीरे–धीरे श्वास को बाहर निकालते हुए पूर्ववत स्थिति में आएंगे।

लाभ – पेट की मांसपेशियों को मजबूत बनाता है। जिनको बार–बार नाभि के अपने स्थान से खिसकने की परेशानी होती है, उनके लिए इस आसन काअभ्यास बहुत अच्छा है।

(38)ताड़ासन – ताड़ का वृक्ष जिसकी लंबाई बहुत होती है और जिसकी जडें मजबूती से जमीन को पकड़े रहती हैं। उसी के नाम पर इस आसन का नाम पड़ा है ताड़ासन। इसके अभ्यास से बच्चों की लंबाई बढ़ने लगती है और वे एकाग्रचित होकर स्थिर रहते हैं अपने लक्ष्य की तरफ बढते हैं।

विधि – सर्वप्रथम बिल्कुल सीधे खड़े हो जाएंगे। दोनों पैर आपस में मिले हुए रहेंगे।

धीरे–धीरे दोनों हाथों को गहरी श्वास लेते हुए ऊपर उठाएंगे। श्वास को बाहर निकालते हुए दोनों हाथों की उंगलियों को एक दूसरे में फंसाते हुए ग्रिप बनाएंगे ग्रिप को उल्टा करेंगे, इस प्रकार की, दोनों हथेलियों का रुख आसमान की तरफ रहेगा। गहरी श्वास लेते हुए दोनों पैरों को पंजों के बल पर उठायेंगे। इसी अवस्था में रुके हुए पूरे शरीर को बीच में से खेंचेंगे। 20 से 25 सेकंड इसी अवस्था में रुके रहेंगे श्वास को बाहर निकालते हुए धीरे–धीरे पैरों को नीचे करेंगे और दोनों हाथों को नीचे ले आएंगे।

लाभ – रक्त संचार को सुचारू करता है। एकाग्रता बढ़ता है। शरीर की सारी मांसपेशियों में खिंचाव लेकर आता है। शारीरिक और मानसिक संतुलन बनाए रखना है।

साइटिका और कमर दर्द जैसे रोगों में राहत देने वाला होता है।

(39)त्रिकोणासन – यह आसन करने पर शरीर त्रिकोण के आकार का दिखाई देता है इसी कारण इसे त्रिकोणासन कहा जाता है।

त्रिकोणासन करने की विधि – अपनी जगह पर बिल्कुल सीधे खड़े हो जाएंगे दोनों हाथ भी बिल्कुल सीधे रहेंगे धीरे–धीरे दोनों पैरों के बीच फासला देंगे। गहरी श्वास लेते हुए दोनों हाथों को ऊपर उठाएंगे और कंधों के समानांतर करेंगे। श्वास को बाहर निकालते हुए अपनी कमर से दाएं तरफ झुकेंगे ध्यान रहे झुकते समय घुटने नहीं मुड़ेंगे। हाथों की स्थिति वैसी ही रहेगी। दायां हाथ दाएं पैर के पंजे के पास रहेगा। बायां हाथ ऊपर की तरफ उठा रहेगा और बाएं हाथ की तरफ ही देखेंगे। कुछ समय इसी स्थिति में रुके रहेंगे दूसरी तरफ से भी यही क्रिया करेंगे।

लाभ – यह आसन कमर को लचीला बनाता है। सीने और हाथों को मजबूत बनाता है। एंजायटी और तनाव को दूर करता है। स्नायुतंत्र को मजबूत बनाता है।

(40)उत्कटासन – यह आसन शरीर में संतुलन बनाने के साथ–साथ मानसिक संतुलन भी बनाता है।

विधि – सर्वप्रथम अपनी जगह पर खड़े हो जाएं। अपने दोनों हाथों को सामने की तरफ कंधों के बराबर लेकर जाएं। अब गहरी श्वास लेते हुए घुटनों को थोड़ा मोड़ते हुए जैसे कुर्सी पर बैठते हैं उस स्थिति में आएं। 8 से 10 सेकंड इसी स्थिति में रुकने के बाद बिल्कुल सीधे खड़े हो जाएं और श्वास को बाहर निकाल दें।

लाभ – इस आसन के नियमित अभ्यास से शरीर में ऊर्जा और ताजगी बनी रहती है।

थकान नहीं होती है। पैरों की मांसपेशियां मजबूत होती है। शरीर सुदृढ़ बनता है।

(41)नटराजासन – नटराज भगवान शिव का नाम है और यह आसन उनकी नृत्य मुद्राओं में से एक है। इसी कारण यह पूरा शारीरिक और मानसिक शांति प्रदान करने वाला आसन है।

विधि – सर्वप्रथम अपनी जगह पर खड़े हो जाएं। बाएं घुटने को मोड़ते हुए बाएं पैर को पीछे की तरफ लेकर जाएं इस प्रकार की बाएं हाथ से अपने बायें पैर को पकड़ सकें।

जितना हो सके अपनी कमर को पीछे की तरफ करें। एक पैर पर बैलेंस बनाए हुए 5 से 7 सेकंड रुके रहे, फिर दूसरे पैर से भी यही क्रिया करें ।

लाभ – शरीर का संतुलन बनाए रखना है और एकाग्रता को बढ़ाता है। तंत्रिका तंत्र को संतुलित बनाये रखता है। शरीर को लचीला बनाता है। हाथों और पैरों को मजबूत बनाता है।

(42)अर्द्ध चक्रासन – इस आसन के अभ्यास से कमर का लचीलापन बढ़ता है।

विधि – अपनी जगह पर बिल्कुल सीधे खड़े हो जाएं। पैरों के बीच 1 से 2 इंच का फासला रहेगा। दोनों हाथ अपनी कमर पर इस प्रकार ले जाकर रखेंगे की उंगलियों का रुख पैरों की तरफ रहेगा और कोहनियां बिल्कुल सीधी रहेंगी। गहरी श्वास लेते हुए अपनी कमर को पीछे की तरफ झुकाएंगे जितना हो सके। कुछ सेकंड रुकने के बाद श्वास को बाहर निकालते हुए बिल्कुल सीधे खड़े हो जाएंगे।

लाभ – कमर को सुदृढ़ मजबूत बनाता है और उसमें लचीलापन लेकर आता है। पेट संबंधित रोगों को दूर करता है। हाथों की मांसपेशियों में खिंचाव लाता है। रक्त संचरण को सुचारू करता है।

(43)पार्श्व कोणासन – रीढ की हड्डी को मजबूती देने के लिए यह आसन महत्वपूर्ण है।

पार्श्व कोणासन को करने की विधि – सबसे पहले, बिल्कुल सीधे खड़े हो जाएं और अपने पैरों को लगभग 3–4 फीट की दूरी में रखें। अपने नितंब को दायें ओर मोड़ें और अपने दाहिने पैर को 90 डिग्री के कोण में बाहर की ओर घुमाएं। अब, अपने दाएं हाथ को जमीन पर अपने दायें पैर के सामने की ओर रखें। अब अपने बाएं हाथ को सीधे आकार में ऊपर उठाएं, सामने की तरफ देखें इस स्थिति में, ध्यान रखें कि बाएं हाथ और शरीर एक सीधी रेखा बनाएंगे और नितंब खींचे रहेंगे। धीरे–धीरे श्वास लें और निकालें और 20–25 सेकंड तक इस स्थिति में रहें। फिर धीरे–धीरे अपने हाथों को पैर के साथ मिलाएं और पैरों को सीधा करें।

लाभ – इस आसन के करने से मांसपेशियां संतुलित होती हैं और उनमें खिंचाव होता है। रीड की हड्डी सुदृढ़ होती है और उसमें लचीलापन आता है। पेट, हाथ और पैरों की चर्बी कम होती है। मानसिक शांति मिलती है।

(44)वृक्षासन – वृक्षासन योग का एक महत्वपूर्ण आसन है, जिसे "वृक्ष" यानी पेड़ के नाम पर रखा गया है। यह आसन संतुलन, स्थिरता और मानसिक एकाग्रता को बढ़ाने में सहायक है। इसे "ट्री पोज़" भी कहा जाता है।

वृक्षासन करने की विधि – सीधा खड़े हो जाएं और अपने हाथों को शरीर के पास रखें।

शरीर को स्थिर करें और ध्यान को केंद्रित करे अपने दाहिने पैर को मोड़ें और उसे बाएं पैर की जांघ के अंदरूनी भाग पर टिकाएं। सुनिश्चित करें कि दाहिने पैर की एड़ी जांघ के पास टिकी हो और पैर का तलवा स्थिर हो। बाएं पैर पर संतुलन बनाए रखें। दोनों हाथों को प्रार्थना मुद्रा में जोड़कर सीने के पास रखें। फिर धीरे–धीरे हाथों को ऊपर की ओर उठाएं और सिर के ऊपर प्रार्थना मुद्रा बनाएं। गहरी और धीमी श्वास लेते हुए स्थिति को स्थिर बनाए रखें।

ध्यान को सामने किसी स्थिर बिंदु पर केंद्रित करें। धीरे–धीरे हाथों को नीचे लाएं। दाहिने पैर को ज़मीन पर वापस रखें। यही प्रक्रिया दूसरे पैर के साथ भी दोहराएं।

लाभ – संतुलन और स्थिरता को बढ़ाता है। पैरों, टखनों और घुटनों को मजबूत करता है। रीढ़ को सीधा रखता है और शरीर को लचीला बनाता है। एकाग्रता और मानसिक स्थिरता में सुधार करता है। तनाव और चिंता को कम करता है।

सावधानियां – घुटनों या टखनों में चोट होने पर इसे न करें। शुरुआत में दीवार का सहारा लिया जा सकता है। उच्च रक्तचाप वाले लोग हाथों को सिर के ऊपर न ले जाएं।

(45)गरुड़ासन –गरुड़ासन अध्यात्म की ओर लेकर जाने वाला एक महत्वपूर्ण आसन है जो आत्म साक्षात्कार करवाता है।

गरुड़ासन करने की विधि – सर्वप्रथम बिल्कुल सीधे खड़े हो जाएं। अपने पैरों को एक दूसरे से थोड़ी दूरी पर रखें। घुटनों को मोड़ते हुए थोड़ा सा नीचे की तरफ अपने नितंबों को लेकर जाएं जैसे किसी कुर्सी पर आधा बैठ रहे हैं। अब, अपने बायें पैर को दाईं ओर

से उठाएं और उसके पीछे अपने दाहिने पैर के ऊपर से ले जाएं। अब, अपने दाहिने पैर के अँगूठे को अपने बाएं पैर के ऊपरी टखने के पीछे स्थित जांघ के पास ले जाएं। फिर, अपने बाएं हाथ को दाहिने हाथ के ऊपर से उठाएं और उसके पीछे अपने दाहिने हाथ के ऊपर ले जाएं। हाथों को बाएं हाथ के आगे ले जाकर रखें। पैरों को संतुलित रखें। अपने ध्यान को संयमित रखें। आराम से श्वास छोड़ें और लें। 7 सेकंड इसी स्थिति में के रहने के बाद हाथ और पैर की स्थिति को बदल कर यही क्रिया करें।

लाभ – यह आसन आध्यात्मिकता की ओर बढ़ाने वाला है। एकाग्रता को बढ़ाता है विद्यार्थियों के लिए बहुत ही अच्छा रहता है लंबाई को बढ़ाने वाला है। शरीर के हर एक अंग को प्रभावित करके उसे सुदृ ढ़ बनता है। आंखों की रोशनी भी तेज करता है।

शुरू में आसन लगने में थोड़ी मुश्किल हो सकती है परंतु धीरे–धीरे अभ्यास के द्वारा इसे बहुत ही उपयुक्त तरीके से लगाया जा सकता है।

(46)वृश्चिकासन करने की विधि –सबसे पहले एक समतल स्थान पर आसन बिछाकर वज्रासन में बैठें। अब अग्र–भुजासन में आने के

लिए आगे झुकें और दोनों कोहनियों को ज़मीन पर टिकाएँ। हथेलियों को ज़मीन पर रखें और सिर को ऊपर रखें। धीरे–धीरे शरीर का पूरा भार हाथों और कोहनियों पर डालें। पैरों को ऊपर उठाएँ और सिर के पीछे ले जाने का प्रयास करें। पैरों को मोड़ें ताकि वे बिच्छू की पूंछ की तरह दिखें। संतुलन बनाए रखें और अपनी श्वासों को नियंत्रित करें। इस आसन को करते समय संतुलन बनाए रखना बहुत आवश्यक है।

लाभ – रीढ़ की हड्डी को मजबूत और लचीला बनाता है। इस आसन को करने से हाथ और कंधे मजबूत होते हैं। मस्तिष्क को शांत करता है। पेट की मांसपेशियों पर दबाव पड़ने से पाचन क्रिया में सुधार होता है। रक्त संचार बढ़ाता है।

सावधानियाँ – उच्च रक्तचाप, हृदय रोग, गर्दन या पीठ की समस्या वाले लोगों को यह आसन करने से बचना चाहिए। गर्भवती महिलाओं को इस आसन से परहेज करना चाह यदि चक्कर आने या सिरदर्द की समस्या हो तो इसे न करें। पहली बार इसे करने पर कुछ दिनों तक दीवार का सहारा लेकर करना ही उचित होता है। इस आसन के अभ्यास में शरीर को किसी प्रकार का कोई झटका ना लगे यह ध्यान रखना आवश्यक है।

वृश्चिकासन योग का एक उन्नत और शक्तिशाली आसन है। यह आसन शरीर की लचीलेपन, संतुलन और शक्ति को बढ़ाने में मदद करता है। यह विशेष रूप से कंधों, रीढ़, हाथों और पेट की मांसपेशियों को मजबूत करने के लिए जाना जाता है।

(47)एकपाद सेतुबंध सर्वांगासन – यह आसन सेतुबंधासन का एक उन्नत रूप माना जाता है। यह रीढ़, पैरों, और पेट की मांसपेशियों को मजबूत करता है और संतुलन में सुधार लाता है।

विधि – पीठ के बल लेट जाएं और पैरों को मोड़ें। पैरों को कूल्हों की चौड़ाई पर रखें और घुटने व एड़ी को सीधा रखें।हाथों को शरीर के बगल में रखें, हथेलियां नीचे की ओर रहें। धीरे–धीरे कमर को ऊपर उठाएं और सेतुबंधासन की स्थिति में आएं। अब दाएं पैर को सीधा करें और ऊपर की ओर उठाएं। संतुलन बनाए रखते हुए इस स्थिति में 10–15 सेकंड तक रहें। वापस सामान्य स्थिति में आना पैर को धीरे–धीरे नीचे लाएं और कमर को भी धीरे से जमीन पर रखें। कुछ क्षण आराम करें और फिर दूसरे पैर से यही क्रिया करें।

लाभ – यह आसन रीढ़ का लचीलापन बढ़ाता है और कमर दर्द में राहत देता है।

पैरों और कूल्हों को मजबूत करता है। सिर और हृदय की ओर रक्त प्रवाह बढ़ाने में मदद करता है। यह आसन मानसिक शांति और संतुलन बनाए रखने में मदद करता है।

सावधानियां – जिन लोगों को गंभीर कमर दर्द, हर्निया या स्लिप डिस्क की समस्या हो, वे यह आसन करने से बचें। हाई ब्लड प्रेशर और गर्दन की समस्या वाले व्यक्तियों को यह आसन नहीं करना चाहिए। इस आसन को करते समय संतुलन बनाए रखना आवश्यक है, अन्यथा गिरने का खतरा हो सकता है।

(48)परिवृत त्रिकोणासन – परिवृत का अर्थ है घुमा हुआ। इससे कमर की ट्विस्टिंग होती है और शरीर त्रिकोण के आकार में आता है इसी कारण से परिवृत त्रिकोणासन कहा जाता है।

विधि – सर्वप्रथम अपनी जगह पर खड़े हो जाएं फिर अपने दाएं पैर को थोड़ा खोलें।

श्वास को बाहर निकालते हुए दाएं हाथ को बाएं पैर के टखने के पास ले जाकर रखें। बायां हाथ आसमान की तरफ रहेगा और गर्दन को मोड़कर बाएं हाथ की ओर की तरफ देखें। कुछ समय ऐसी स्थिति में रुकने के बाद गहरी श्वास लेते हुए बीच में आकर रुकें। दूसरी तरफ से भी यही क्रिया दोहराएं।

लाभ–शारीरिक संतुलन को बनाए रखता है। मधुमेह के रोगियों को लाभ देने वाला होता है। हाथों और पैरों की मांसपेशियों को मजबूत बनाता है।

(49)भुजंगासन –भुजंग का अर्थ है सर्प इस आसन में शरीर की आकृति सर्प के समान दिखाई देती है इसलिए इसे भुजंगासन कहा गया है।

विधि – सर्वप्रथम पेट के बल पर लेट जाएं। दोनों पैर मिले हुए रहेंगे। दोनों हाथों को कंधों के पास लाकर रखेंगे गहरी श्वास लेते हुए कमर तक के शरीर को ऊपर उठा लेंगे और ऊपर आसमान की तरफ देखेंगे। कुछ देर इसी स्थिति में रुके रहने के बाद धीरे–धीरे श्वास को बाहर निकालते हुए नीचे आ जाएंगे। भुजंगासन की स्थिति में रहते हुए ही जब पैरों को भी घुटनों से मोडकर सिर के लगा लिया जाता है तो वह पूर्ण भुजंगासन की अवस्था होती है।

लाभ –जिनको कमर दर्द की शिकायत रहती है उनके लिए बहुत अच्छा आसन है।

मणिपुर चक्र को बैलेंस में किया रहता है। मासिक धर्म संबंधी विकारों को दूर करता है।

दिमाग को शांत रखता है।

आसन करने के नियम

जब भी हम योगासन और प्राणायाम शुरू करते हैं तो उसके कुछ विशिष्ट नियम होते हैं जिनका ध्यान रखा जाना बहुत आवश्यक होता है। यह महत्वपूर्ण नियम इस प्रकार हैं –

1. आसन हमेशा खाली पेट ही किए जाने चाहिए।
2. सुबह–सुबह का समय योगासनों के लिए सबसे अच्छा होता है परंतु यह शाम को भी किये जा सकते हैं।
3. खाना खाने के कम से कम 3:30 घंटे बाद आसन किए जाने चाहिए।
4. योग करते समय जमीन पर कोई आसन, मेट या दरी अवश्य बिछा होना चाहिए।

5. जिनके पेट में दर्द रहता है उन्हें पीछे की तरफ झुक कर किए जाने वाले आसन नहीं करने हैं।
6. जिनके कमर में दर्द रहता है उन्हें आगे की तरफ बहुत नहीं झुकना है।
7. योग करने के तुरंत बाद कुछ खाना पीना नहीं है कम से कम 30 मिनट के बाद एक गिलास पानी पीना है और फिर नाश्ता करना है।
8. गर्भवती महिला को हमेशा किसी चिकित्सक के सानिध्य में ही योग करना है।
9. किसी भी प्रकार की सर्जरी होने पर किसी योग गुरु के पास जाकर ही आसनों का अभ्यास करना चाहिए।
10. स्वस्थ मनुष्य सभी प्रकार के आसनों को कर सकता है परंतु किसी भी प्रकार के रोग होने की स्थिति में स्वयं से योग नहीं करना है किसी योग चिकित्सक की सहायता लेनी चाहिए।
11. योग हमेशा ढीले कपड़ों में करना चाहिए।
12. योग का अभ्यास हमेशा खुले वातावरण में प्रकृति के बीच करना चाहिए।
13. योग करते समय कभी भी शरीर के साथ जबरदस्ती नहीं करनी चाहिए। सहनशीलता के अनुसार ही आसनों का अभ्यास करना चाहिए।
14. आसन करते समय श्वासों पर ध्यान होना अत्यंत आवश्यक हैं।

इस प्रकार इन कुछ महत्वपूर्ण नियमों को ध्यान में रखते हुए यदि हम योग के मार्ग की ओर बढ़ेंगे तो हमें दोगुना फायदा होगा।